पाठ - 1

श्री रामचन्द्र

श्री रामचन्द्र का जीवन आदर्श था। उनका व्यक्तित्व ऐसे उच्च मानवीय गुणों से सम्पन्न था कि आज भी उनका जीवन आदर्श मनुष्य बनने की प्रेरणा देने वाला अक्षय स्रोत बना हुआ है।
श्री रामचन्द्र के जीवन की मुख्य घटनाएँ सर्वविदित हैं। उन घटनाओं तथा प्रसंगों से उनके चरित्र की श्रेष्ठता का पता चलता है।

अयोध्या के महाराज दशरथ के वे सबसे बड़े पुत्र थे। श्री राम के भाई भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न उनके साथ अत्यधिक सम्मानपूर्ण व्यवहार करते थे। भरत की माँ कैकेयी तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माँ सुमित्रा को उन्हें उतना ही स्नेह मिला जितना उन्हें अपनी माँ कौशल्या से मिला। पिता, गुरुजन तथा साधारण जनता के भी वे प्राणप्रिय थे। जनता के सभी वर्गों के साथ राम का व्यवहार बहुत ही मृदुल एवं शिष्ट था। अपने छोटे भाइयों को प्रसन्न करने के लिए वे खेल में स्वयं हारकर उनको विजयी बना देते थे।

राम गुरुजनों की आज्ञा का पालन बड़ी तत्परता तथा लगन से करते थे। ऋषि विश्वामित्र राक्षसों के उपद्रव के कारण आश्रम में यज्ञ नहीं कर पा रहे थे। आश्रमवासियों की रक्षा और निर्विघ्न यज्ञ करने में सहायता के लिए वे राजा दशरथ के पास आये। ऋषि ने राजा से राम और लक्ष्मण को माँगा। पिता की आज्ञा मानकर राम और लक्ष्मण ऋषि के साथ आश्रम पहुँचे। दोनों राजकुमारों ने अद्भुत साहस तथा शौर्य के साथ आश्रमवासियों की रक्षा की। अत्याचारी राक्षसों का दमन कर उन्होंने आश्रम और उसके आस-पास शान्ति स्थापित की।

इसी बीच विश्वामित्र को जनकपुर में राजकुमारी सीता के स्वयंवर का

समाचार प्राप्त हुआ। राजा जनक ने यह शर्त रखी कि शिव के धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ाने वाले के साथ ही सीता का विवाह किया जाएगा। राम ने धनुष को उठाने के लिये कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। केवल अपने गुरु का आदेश पाने पर ही उन्होंने शिव-धनुष को उठाया। सीता के साथ विवाह के बाद राम अयोध्या लौटे और उनका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा।

अब राजा दशरथ वृद्ध हो चले थे। वे राम का युवराज पद पर अभिषेक कर शासन के भार से मुक्त होना चाहते थे। उनकी इच्छानुसार अभिषेक की तैयारी होने लगी तभी दासी मन्थरा ने कैकेयी के कान भरे। मन्थरा के बहकावे में आकर कैकेयी ने राजा से दो वर माँगे जिनके लिये राजा पहले वचन दे चुके थे। इन वरों का सम्बन्ध देवासुर संग्राम की घटना से था। उसमें दशरथ ने देवों के पक्ष में असुरों के विरुद्ध युद्ध किया था। युद्ध स्थल में कैकेयी ने बड़े साहस के साथ राजा की सहायता की थी। इससे प्रसन्न होकर राजा ने कैकेयी को दो वरदान माँगने को कहा था। कैकेयी ने उस समय वरदान नहीं माँगे और भविष्य में कभी माँग लेने की बात कही थी।

अब कैकेयी ने राजा को उन्हीं वचनों का स्मरण कराते हुए दो वरदान माँगे। एक वरदान में उसने पुत्र भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा और दूसरे में राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास। राजा बहुत ही दृढ़ प्रतिज्ञ थे और प्रण के पालन के लिए वे अपने प्राण की भी चिन्ता नहीं करते थे। अपने प्रिय पुत्र राम को वनवास देने की कल्पना ही उनके लिए अत्यधिक कष्टदायक थी, फिर भी वचन के धनी राजा ने अपना प्रण निभाया। राम के वियोग में दशरथ का जीवित रह पाना कठिन था किन्तु उन्होंने प्रण नहीं छोड़ा।

राम पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर सहर्ष वन के लिए चल पड़े। उनके साथ सीता और लक्ष्मण ने भी वन की राह पकड़ी। राम की अनुपस्थिति में राजा दशरथ की मृत्यु हो गई। भाई भरत राम को मनाकर अयोध्या वापस लाने के लिए चित्रकूट गए। उस अवसर पर भी राम ने पिता की आज्ञा के पालन पर दृढ़ रहने का संकल्प दोहराया और वनवास की अवधि पूरी होने पर अयोध्या लौटने का आश्वासन दिया।

यद्यपि श्री रामचन्द्र का जन्म राजकुल में हुआ था तथापि वे समाज के साधारण व्यक्तियों के साथ बहुत ही आत्मीयता तथा सहृदयता का व्यवहार करते थे। जब वे अयोध्या से वन की ओर जा रहे थे तब नदी पार करते समय उनकी भेंट निषाद राज गुह से हुई। गुह ने भाव-विभोर होकर उनका स्वागत किया। रामचन्द्र जी ने उनके अपनेपन के भाव को सम्मान दिया और वे गले लगाकर उनसे मिले। भीलनी शबरी के आतिथ्य को भी उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। इन उदाहरणों से पता चलता है कि वे छुआछूत या ऊँच-नीच की भावना से किसी के साथ व्यवहार नहीं करते थे।

वनवास की अवधि में श्री रामचन्द्र को अनेक बार कठिन परिस्थितियों का सामना

करना पड़ा। जब वे पंचवटी में कुटी बनाकर रह रहे थे तब लंका के राजा रावण की बहिन शूर्पणखा वहाँ आई। रामचन्द्र जी को देखकर वह आकृष्ट हुई और उसने उनके साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। रामचन्द्र जी विवाहित थे और उनकी पत्नी सीता जी उनके साथ थीं। उन्होंने शूर्पणखा के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। यद्यपि उस समय राजा लोग कई विवाह करते थे, उनके पिता दशरथ की भी कई रानियाँ थीं, रामचन्द्रजी की केवल एक पत्नी सीता थी। शूर्पणखा के हठ के कारण लक्ष्मण जी ने उसे दण्डित किया तो वह क्रुद्ध होकर रावण के पास पहुँची। रावण उसके अपमान से बहुत क्रोधित हुआ।

रावण ने छलपूर्वक सीता जी का अपहरण किया। रामचन्द्र जी ने सीताजी की खोज की। हनुमान ने लंका जाकर सीता जी का पता लगाया। रामचन्द्र जी ने अंगद को लंका भेजकर शान्तिपूर्वक सीताजी को वापस पाने का प्रयत्न किया किन्तु घमण्ड में चूर रावण ने कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में युद्ध की स्थिति आ पहुँची। संकट की इस स्थिति में भी रामचन्द्र जी ने अयोध्या से कोई सहायता नहीं माँगी। उन्होंने भरत को इस सम्बन्ध में कोई समाचार नहीं भेजा। किष्किन्धा के राजा सुग्रीव और अंगद, हनुमान आदि की सहायता से उन्होंने अपनी सेना तैयार की और अपने बाहुबल से रावण को युद्ध में परास्त किया। यह उनके स्वावलम्बन तथा आत्मबल का अनुपम उदाहरण है।

रामचन्द्र जी ने लंका पर विजय प्राप्त करने के बाद वहाँ का राज्य रावण के भाई विभीषण को सौंप दिया। इससे पहले किष्किन्धा के राजा बालि को हराने के बाद उन्होंने वहाँ का राज्य उसके भाई सुग्रीव को सौंप दिया था। उस समय इतनी दूर के राज्यों पर सीधे नियन्त्रण रख पाना सरल कार्य नहीं था। इस दृष्टि से रामचन्द्र जी का यह निर्णय बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण और दूरदर्शितापूर्ण था।

सीताजी और लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र जी अयोध्या लौटे तो जनता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। बहुत धूम-धाम से रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक हुआ। उनकी अनुपस्थिति में भरत ने अयोध्या के राज्य को धरोहर की तरह सुरक्षित रखा और शासन का संचालन किया। रामचन्द्र जी ने शासन की उत्तम व्यवस्था की। उन्होंने जनता की सुख-सुविधा का इतना अच्छा प्रबन्ध किया कि किसी व्यक्ति को कोई कष्ट नहीं था। सब स्वस्थ तथा सुखी थे और आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

रामराज्य की महिमा का कवियों ने गुणगान किया है। यदि समाज के सभी वर्गों और व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की उत्तम व्यवस्था हो जाए तो शान्ति और सुख की स्थिति आ जाती है। रामचन्द्र जी के राज्य में शासन की ऐसी ही व्यवस्था की गई थी। उत्तम भोजन, आवास तथा रहन-सहन, शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, मनोरंजन आदि की सुविधाएँ सबको सुलभ थीं फलस्वरूप कोई रोगग्रस्त नहीं होता था। सब मन लगाकर अपना-अपना काम करते थे। अन्न, फल, दूध, घी आदि का पर्याप्त उत्पादन होता था, इसलिए लोगांे को किसी प्रकार के अभाव का सामना

नहीं करना पड़ता था। लोग आपस में मिल-जुलकर प्रेम-भाव से रहते थे।

रामचन्द्र जी के राज्य में जनता को वे सभी सुख-सुविधाएँ सुलभ थीं जिनकी आज के लोक कल्याणकारी राज्य में कामना की जाती है। इसीलिए रामराज्य लोक कल्याणकारी राज्य का पर्याय बन गया है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में रामराज्य का विशद वर्णन किया है। महात्मा गांधी भी रामराज्य की उत्तम व्यवस्था से बहुत प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने भारत में रामराज्य की स्थापना का आदर्श सामने रखा और उसी के लिए जीवन भर प्रयास किया।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *रामचंद्र जी के जीवन के कौन-कौन से गुण आपको प्रिय लगते हैं?* *उन गुणों को आप क्यों अच्छा समझते हैं?*
2. *श्री राम के राज्याभिषेक के समय कौन-सी घटना घटी?*
3. *रामराज्य को आदर्श राज्य क्यों कहा गया है?*
4. *इस पाठ में श्री राम के अतिरिक्त और कौन-कौन से पात्र हैं जो आपको पसंद हैं और क्यों?*
5. *अपने गुरु जी से रामचंद्र जी के पुत्रों के बारे में कहानी सुनिए।*

पाठ -2

महर्षि दधीचि

संसार में समस्त प्राणी अपने लिए जीते हैं। सभी अपना भला चाहते हैंए लेकिन कुछ व्यक्तित्व ऐसे भी होते हैं जो परोपकार हेतु अपने हितों का बलिदान कर देते हैं। हमारे देश में ऐसे अनेक पुरुष और नारियाँ हुई हैंए जिन्होंने दूसरों की सहायता और भलाई के लिए स्वयं कष्ट सहे हैं।
ऐसे ही महान परोपकारी पुरुषों में महर्षि दधीचि का नाम आदर के साथ लिया जाता है। महर्षि दधीचि ज्ञानी थे। उनकी विद्वता की प्रसिद्धि देश के कोने.कोने तक फैली हुई थी। दूर.दूर से विद्यार्थी उनके यहाँ विद्याध्ययन के लिए आते थे। वे सज्जनए दयालुए उदार तथा सभी से प्रेम का व्यवहार करते थे।

महर्षि दधीचि नैमिषारण्य (सीतापुर-उ0प्र0) के घने जंगलों के मध्य आश्रम बना कर रहते थे। उन्हीं दिनांे देवताओं और असुरों में लड़ाई छिड़ गयी। देवता धर्म का राज्य बनाये रखने का प्रयास कर रहे थे जिससे लोगों का हित होता रहे। असुरों के कार्य और व्यवहार ठीक नहीं थे। लोगों को तरह-तरह से सताया करते थे। वे अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए देवताओं से लड़ रहे थे। देवताओं को इससे चिंता हुई। देवताओ के हार जाने का अर्थ था असुरों का राज्य स्थापित हो जाना। वे पूरी शक्ति से लड़ रहे थे। बहुत दिनों से यह लड़ाई चल रही थी। देवताओं ने असुरांे को हराने के अनेक प्रयत्न किए किन्तु सफल नहीं हुए।
हताश देवतागण अपने राजा इन्द्र के पास गये और बोले राजन-हमें युद्ध में सफलता के आसार नहीं दिखाई पड़ते, क्यों न इस विषय में ब्रह्मा जी से कोई उपाय पूछें ?' इन्द्र देवताओं की सलाह मानकर ब्रह्मा जी के पास गये। इन्द्र ने उन्हें अपनी चिन्ता से अवगत कराया। ब्रह्माजी बोले - "हे देवराज! त्याग में इतनी शक्ति होती है कि उसके बल पर किसी भी असम्भव कार्य को सम्भव बनाया जा सकता है लेकिन दःुख है कि इस समय आप में से कोई भी इस मार्ग पर नहीं चल रहा है।"

ब्रह्मा जी की बातें सुनकर देवराज इन्द्र चिन्तित हो गए, वे बोले- फिर क्या होगा ? श्रीमन् ! क्या यह सृष्टि असुरों के हाथ चली जाएगी ? यदि ऐसा हुआ तो बड़ा अनर्थ होगा। ब्रह्माजी ने कहा- "आप निराश न हों ! असुरों पर विजय पाने का एक उपाय है, यदि आप प्रयास करें तो निश्चय ही देवताओं की जीत होगी। इन्द्र ने उतावले होते हुए पूछा- 'श्रीमन्! शीघ्र उपाय बताएँ, हम हर सम्भव प्रयास करेंगे।' ब्रह्माजी ने बताया -"नैमिषारण्य वन में एक तपस्वी तप कर रहे हैं। उनका नाम दधीचि है। उन्होंने तपस्या और साधना के बल पर अपने अन्दर अपार शक्ति जुटा ली है, यदि उनकी अस्थियों से बने अस्त्रों का प्रयोग आप लोग युद्ध में करें तो असुर निश्चित ही परास्त होंगे।"

इन्द्र ने कहा- "किन्तु वे तो जीवित हैं! उनकी अस्थियाँ भला हमें कैसे मिल सकती हैं ?" ब्रह्मा ने कहा- "मेरे पास जो उपाय था, मैंने आपको बता दिया। शेष समस्याओं का समाधान स्वयं दधीचि कर सकते हैं"।

महर्षि दधीचि को इस युद्ध की जानकारी थी। वे चाहते थे कि युद्ध समाप्त हो। सदा शान्ति चाहने वाले आश्रमवासी लड़ाई-झगड़े से दुखी होते हैं। उन्हें आश्चर्य भी होता था कि लोग एक दूसरे से क्यों लड़ते हैं ? महर्षि दधीचि को चिन्ता थी कि असुरों के जीतने से अत्याचार बढ़ जाएगा।

देवराज इन्द्र झिझकते हुए महर्षि दधीचि के आश्रम पहुँचे। महर्षि उस समय ध्यानावस्था में थे। इन्द्र उनके सामने हाथ जोड़कर याचक की मुद्रा में खड़े हो गये। ध्यान भंग होने पर उन्होंने इन्द्र को बैठने के लिए कहा, फिर उनसे पूछा -"कहिए देवराज कैसे आना हुआ ?" इन्द्र बोले- "महर्षि क्षमा करें, मैंने आपके ध्यान में बाधा पहुँचाई है। महर्षि आपको ज्ञात होगा, इस समय देवताओं पर असुरों ने चढ़ाई कर दी है। वे तरह-तरह के अत्याचार कर रहे हैं। उनका सेनापति वृत्रासुर बहुत ही क्रूर और अत्याचारी है, उससे देवता हार रहे हैं।" महर्षि ने कहा - "मेरी भी चिन्ता का यही विषय है, आप ब्रह्मा जी से बात क्यों नहीं करते ?" इन्द्र ने कहा- " मैं उनसे बात कर चुका हूँ। उन्होंने उपाय भी बताया है किन्तु..............?" "किन्तु........किन्तु क्या? देवराज ! आप रुक क्यों गये ? साफ-साफ बताइए। मेरे प्राणों की भी जरूरत होगी तो भी मैं सहर्ष तैयार हूँ। विजय देवताओं की ही होनी चाहिए।" महर्षि ने जब यह कहा तो इन्द्र ने कहा - हे महर्षि ! "ब्रह्मा जी ने बताया है कि आपकी अस्थियों से अस्त्र बनाया जाए तो वह वज्र के समान होगा। वृत्रासुर को मारने हेतु ऐसे ही वज्रास्त्र की आवश्यकता है।"

इन्द्र की बात सुनते ही महर्षि का चेहरा कान्तिमय हो उठा। उन्होंने सोचा, मैं धन्य हो गया। उनका रोम-रोम पुलकित हो गया।

प्रसन्नतापूर्वक महर्षि बोले-"देवराज आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी। मेरे लिए इससे ज्यादा गौरव की बात और क्या होगी ? आप निश्चय ही मेरी अस्थियों से वज्र बनवाये और असुरों का विनाश कर चारों ओर शान्ति स्थापित करें।"

दधीचि ने भय एवं चिन्ता से मुक्त होकर अपने नेत्र बन्द कर लिए। उन्होंने योग बल से अपने प्राणों को शरीर से अलग कर लिया। उनका शरीर निर्जीव हो गया। देवराज इन्द्र आदर से उनके मृत शरीर को प्रणाम कर अपने साथ ले आए। महर्षि की

अस्थियों से वज्र बना, जिसके प्रहार से वृत्रासुर मारा गया। असुर पराजित हुए और देवताओं की जीत हुई।

महर्षि दधीचि को उनके त्याग के लिये आज भी लोग श्रद्धा से याद करते हैं। नैमिषारण्य में प्रतिवर्ष फाल्गुन माह में उनकी स्मृति में मेले का आयोजन होता है। यह मेला महर्षि के त्याग और मानव सेवा के भावों की याद दिलाता है।

अभ्यास

1. *निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-*

(क) *असुर देवताओं से क्यों लड़ रहे थे* ?

(ख) *देवताओं को महर्षि दधीचि की अस्थियों की आवश्यकता क्यों पड़ी* ?

(ग) *अस्थियाँ माँगे जाने पर दधीचि ने क्या सोचा* ?

(घ) *नैमिषारण्य में प्रति वर्ष फाल्गुन माह में मेला क्यों लगता है* ?

2. *पाठ की घटनाओं को सही क्रम दीजिए-*

(क) *देवताओं और असुरों में युद्ध छिड़ना।*

(ख) *इंद्र का महर्षि दधीचि के पास जाना।*

(ग) *इंद्र का ब्रह्मा जी से असुरों पर विजय के बारे में उपाय पूछना।*

(घ) *इंद्र का ब्रह्मा जी के पास जाना* ।

(ङ) *दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाया जाना* ।

(च) *वृत्रासुर का संहार* ।

(छ) *महर्षि दधीचि का प्राण त्यागना।*

3. *जनमानस की भलाई के लिए महर्षि दधीचि ने अपने प्राण त्याग दिए। त्याग का यह एक अनूठा उदाहरण है। आप के समक्ष भी कभी-कभी ऐसी स्थितियाँ आती हैं, तब आप क्या करेंगे* ? *यदि-*

(क) *आपके किसी साथी के पास किताब खरीदने के लिए पैसे न हों।*

(ख) *आपको स्कूल जाने के लिए देर हो रही हो, और घर में खाना तैयार न हो।*

(ग) *दो लोग आपस में झगड़ा कर रहे हों।*

(घ) *कोई व्यक्ति सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुँचा रहा हो।*

4. "*त्याग मानव का सर्वोपरि गुण है*" *इस पर शिक्षक/शिक्षिका से चर्चा कर दस वाक्य लिखिए।*

पाठ - 3

दुष्यन्त पुत्र भरत

''होनहार बिरवान के होत चीकने पात'' इस कहावत का आशय यह है कि वीर, ज्ञानी और गुणी व्यक्ति की झलक उसके बचपन से ही दिखाई देने लगती है। हमारे देश में अनेक महापुरुष हुए हैं। इन महापुरुषों ने अपने बचपन में ही ऐसे कार्य किए, जिन्हें देखकर उनके महान होने का आभास होने लगा था। ऐसे ही एक वीर, प्रतापी व साहसी बालक भरत थे।

भरत हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त के पुत्र थे। राजा दुष्यन्त एक बार शिकार खेलते हुए कण्व ऋषि के आश्रम पहुँचे वहाँ शकुन्तला को देखकर वह उस पर मोहित हो गए और शकुन्तला से आश्रम में ही गंधर्व विवाह कर लिया। आश्रम में ऋषि कण्व के न होने के कारण राजा दुष्यन्त शकुन्तला को अपने साथ नहीं ले जा सके। उन्होंने शकुन्तला को एक अँगूठी दे दी जो उनके विवाह की निशानी थी। एक दिन शकुन्तला अपनी सहेलियों के साथ बैठी दुष्यन्त के बारे में सोच रही थी, उसी समय दुर्वासा ऋषि आश्रम में आए। शकुन्तला दुष्यन्त की याद में इतनी अधिक खोई हुई थी कि उसे दुर्वासा ऋषि के आने का पता ही नहीं चला। शकुन्तला ने उनका आदर-सत्कार नही किया, जिससे क्रोधित होकर दुर्वासा ऋषि ने शकुन्तला को शाप दिया कि 'जिसकी याद में खोए रहने के कारण तूने मेरा सम्मान नहीं किया, वह तुझको भूल जाएगा'।
शकुन्तला की सखियों ने क्रोधित ऋषि से अनजाने में उससे हुए अपराध को क्षमा करने के लिए निवेदन किया। ऋषि ने कहा-'मेरे शाप का प्रभाव समाप्त तो नहीं हो सकता किन्तु दुष्यन्त द्वारा दी गई अँगूठी को दिखाने से उन्हें अपने विवाह का स्मरण हो जाएगा'।
कण्व ऋषि जब आश्रम वापस आये तो उन्हें शकुन्तला के गंधर्व विवाह का समाचार मिला। उन्होंने एक गृहस्थ की भाँति अपनी पुत्री को पति के पास जाने के लिए विदा किया। शकुन्तला के पास राजा द्वारा दी गयी अँगूठी खो गई थी। शाप के प्रभाव से

राजा दुष्यन्त अपने विवाह की घटना भूल चुके थे। वे शकुन्तला को पहचान नहीं सके। निराश शकुन्तला को उसकी माँ मेनका ने कश्यप ऋषि के आश्रम में रखा। उस समय वह गर्भवती थी। उसी आश्रम में दुष्यन्त के पुत्र भरत का जन्म हुआ।
भरत बचपन से ही वीर और साहसी थे। वह वन के हिंसक पशुओं के साथ खेलते और सिंह के बच्चों को पकड़ कर उनके दाँत गिनते थे। उनके इन निर्भीक कार्यों से आश्रमवासी उन्हें सर्वदमन कह कर पुकारते थे।
समय का चक्र ऐसा चला कि राजा को वह अँगूठी मिल गई जो उन्होंने शकुन्तला को विवाह के प्रतीक के रूप में दी थी। अँगूठी देखते ही उनको विवाह की याद ताजा हो गई।
शकुन्तला की खोज में भटकते हुए एक दिन वह कश्यप ऋषि के आश्रम में पहुँच गए जहाँ शकुन्तला रहती थी। उन्होंने बालक भरत को शेर के बच्चों के साथ खेलते देखा। राजा दुष्यन्त ने ऐसे साहसी बालक को पहले कभी नहीं देखा था। बालक के चेहरे पर अद्भुत तेज था। दुष्यन्त ने बालक भरत से उसका परिचय पूछा। भरत ने अपना और अपनी माँ का नाम बता दिया।
दुष्यन्त ने भरत का परिचय जानकर उसे गले से लगा लिया और शकुन्तला के पास गए। अपने पुत्र एवं पत्नी को लेकर वह हस्तिनापुर वापस लौट आए। हस्तिनापुर में भरत की शिक्षा-दीक्षा हुई। दुष्यन्त के बाद भरत राजा हुए। उन्होंने अपने राज्य की सीमा का विस्तार सम्पूर्ण आर्यावर्त (उत्तरी और मध्य भारत) में कर लिया। अश्वमेद्द यज्ञ कर उन्होंने चक्रवर्ती सम्राट की उपाधि प्राप्त की। चक्रवर्ती सम्राट भरत ने राज्य में सुदृढ़ न्याय व्यवस्था और सामाजिक एकता (सद्भावना) स्थापित की। उन्होंने सुविधा के लिए अपने शासन को विभिन्न विभागों में बाँट कर प्रशासन में नियंत्रण स्थापित किया। भरत की शासन प्रणाली से उनकी कीर्ति सारे संसार में फैल गई।
सिंहों के साथ खेलने वाले इस 'भरत' के नाम पर ही हमारे देश का नाम 'भारत' पड़ा।

पारिभाषिक शब्दावली

गंधर्व विवाह : स्वेच्छा से प्रेम विवाह

अश्वमेध यज्ञ : एक प्रसिद्ध वैदिक यज्ञ, इसमें एक घोड़ा छोड़ा जाता था, जिसके साथ सम्राट की सेना रहती थी। सभी देश के राजा उस घोड़े का स्वागत करते थे। यदि कोई राजा घोड़े को पकड़ लेता, तो सम्राट की सेना उससे युद्ध करती थी। विजयी घोड़ा वापस आने पर हवन, दान, भोज आदि का कार्यक्रम होता था और सम्राट को चक्रवर्ती सम्राट की उपाधि दी जाती थी। राजा रामचन्द्र ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था।

चक्रवर्तीःयह उपाधि उस सम्राट को दी जाती थी, जिसका सम्पूर्ण देश पर साम्राज्य हो।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.भरत किसके पुत्र थे ?
2.हमारे देश का नाम भारत किसके नाम पर पड़ा ?
3.शकुन्तला को दुष्यन्त क्यों नहीं पहचान सके ?
4.ऋषि दुर्वासा शकुंतला से क्यों क्रोधित हो गए और शकुंतला को क्या शाप दिया ?

योग्यता विस्तार

आपके आस-पास में बचपन से वीर, साहसी, तेजस्वी और कौन-कौन से बालक/ बालिकाएँ हुई हैं ? सूची बनाइए।

पाठ - 4

सत्यवादी हरिश्चन्द्र

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़व्रत हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार।

सत्य की चर्चा जब भी की जायेगी, महाराजा हरिश्चन्द्र का नाम ज़रूर लिया जायेगा। हरिश्चन्द्र इक्ष्वाकु वंश के प्रसिद्ध राजा थे। कहा जाता है कि वे जो बात कह देते थे उसका पालन निश्चित रूप से करते थे। इनके राज्य में सर्वत्र सुख और शान्ति थी। इनकी पत्नी का नाम तारामती तथा पुत्र का नाम रोहिताश्व था। तारामती को कुछ लोग शैव्या भी कहते थे। महाराजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता और त्याग की सर्वत्र चर्चा थी। महर्षि विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

रात्रि में महाराजा हरिश्चन्द्र ने स्वप्न देखा कि कोई तेजस्वी ब्राह्मण राजभवन में आया है। उन्हें बड़े आदर से बैठाया तथा उनका यथेष्ट आदर-सत्कार किया। हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में ही इस ब्राह्मण को अपना राज्य दान में दे दिया। जगने पर महाराज इस स्वप्न को भूल गए। दूसरे दिन महर्षि विश्वामित्र इनके दरबार में आए। उन्होंने महाराज को स्वप्न में दिए गए दान की याद दिलाई। ध्यान करने पर महाराज को स्वप्न की सारी बातें याद आ गई और उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया। विश्वामित्र ने राजा से दक्षिणा माँगी। राजा ने मंत्री से दक्षिणा देने हेतु राजकोष से मुद्रा लाने को कहा। विश्वामित्र क्रोधित हो गए। उन्होंने कहा- ’जब सारा राज्य तुमने दान में दे दिया तब राजकोष तुम्हारा कैसे रहा ? यह तो हमारा हो गया। उसमें से दक्षिणा देने का अधिकार तुम्हें कहाँ रहा ?”

हरिश्चन्द्र सोचने लगे। विश्वामित्र की बात में सच्चाई थी किन्तु उन्हें दक्षिणा देना भी आवश्यक था। वे यह सोच ही रहे थे कि विश्वामित्र बोल पड़े- ’तुम हमारा समय व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। तुम्हें यदि दक्षिणा नहीं देनी है तो साफ-साफ कह दो, मैं दक्षिणा नहीं दे सकता। दान देकर दक्षिणा देने में आनाकानी करते हो। मैं तुम्हें शाप दे दूँगा।”

हरिश्चन्द्र विश्वामित्र की बातें सुनकर दुःखी हो गए। वे बोले- “भगवन् ! मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ ? आप जैसे महर्षि को दान देकर दक्षिणा कैसे रोकी जा सकती है ? राजमहल, कोष सब आपका हो गया है। आप मुझे थोड़ा समय दीजिए ताकि मैं आपकी दक्षिणा का प्रबन्ध कर सकूँ।”

काशी में राजा हरिश्चन्द्र ने कई स्थलों पर स्वयं को बेचने का प्रयत्न किया पर सफलता न मिली। सायंकाल तक राजा को श्मशान घाट के मालिक डोम ने खरीदा।

राजा अपनी रानी तथा पुत्र से अलग हो गये। रानी तारामती को एक साहूकार के यहाँ घरेलू काम-काज करने को मिला और राजा को मरघट की रखवाली का काम।
तारामती जो पहले महारानी थी, जिसके पास सैकड़ों दास-दासियाँ थीं, अब बर्तन माँजने और चौका लगाने का काम करने लगी। स्वर्ण सिंहासन पर बैठने वाले राजा हरिश्चन्द्र श्मशान पर पहरा देने लगे। जो लोग शव जलाने मरघट पर आते थे, उनसे कर वसूलने का कार्य राजा को दिया गया। अपने मालिक की डाँट-फटकार सहते हुए भी नियम एवं ईमानदारी से अपना कार्य करते रहे। उन्होंने अपने कार्य में कभी भी कोई त्रुटि नहीं होने दी।
इधर रानी के साथ एक हृदय विदारक घटना घटी। उनके साथ पुत्र रोहिताश्व भी रहता था। एक दिन खेलते-खेलते उसे साँप ने डँस लिया। उसकी मृत्यु हो गई। वह यह भी नहीं जानती थी कि उसके पति कहाँ रहते हैं। पहले से ही विपत्ति झेलती हुई तारामती पर यह दुःख वज्र की भाँति आ गिरा। उनके पास कफन तक के लिए पैसे नहीं थे। वह रोती-बिलखती किसी प्रकार अपने पुत्र के शव को गोद में उठा कर अन्तिम संस्कार के लिए श्मशान ले गई।

रात का समय था। सारा श्मशान सन्नाटे में डूबा था। एक दो शव जल रहे थे। इसी समय पुत्र का शव लिए रानी भी श्मशान पर पहुँची । हरिश्चन्द्र ने तारामती से श्मशान का कर माँगा। उनके अनुनय-विनय करने पर तथा उनकी बातों से वे रानी तथा अपने पुत्र को पहचान गए, किन्तु उन्होंने नियमों में ढील नहीं दी। उन्होंने अपने मालिक की आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया। उन्होंने तारामती से कहा- "श्मशान का कर तो तुम्हें देना ही होगा। उससे कोई मुक्त नहीं हो सकता। यदि मैं किसी को छोड़ दूँ तो यह अपने मालिक के प्रति विश्वासघात होगा।" हरिश्चन्द्र ने तारामती से कहा, - "यदि तुम्हारे पास और कुछ नहीं है तो अपनी साड़ी का आधा भाग फाड़ कर दे दो, मैं उसे ही कर के रूप में ले लूँगा।"
तारामती विवश थी। उसने जैसे ही साड़ी को फाड़ना आरम्भ किया, आकाश मे गम्भीर गर्जना हुई। विश्वामित्र प्रकट हो गए। उन्होंने रोहिताश्व को भी जीवित कर दिया। विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को आशीर्वाद देते हुए कहा - ' तुम्हारी परीक्षा हो रही थी कि तुम किस सीमा तक सत्य एवं धर्म का पालन कर सकते हो।' यह कहते हुए विश्वामित्र ने उन्हें उनका पूरा राज्य जैसे का तैसा लौटा दिया।
महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वयं को बेच कर भी सत्यव्रत का पालन किया। यह सत्य एवं धर्म के पालन का एक बेमिसाल उदाहरण है। आज भी महाराजा हरिश्चन्द्र का नाम श्रद्धा और आदर के साथ लिया जाता है।

अभ्यास

1.राजा हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अपना राज्य किसे दान में दिया ?
2.राजा ने स्वयं को क्यों बेचा ?
3.हरिश्चन्द्र अपने पुत्र के शव का बिना 'कर' लिए अन्तिम संस्कार क्यों नहीं करने दे रहे थे ?
4.विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को उनका राज्य क्यों लौटा दिया ?
5.हरिश्चंद्र का नाम अमर क्यों है ?

6.बातचीत को आगे बढ़ाइए -

शिवानीः कल मेरे स्कूल में 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' नाटक खेला गया।

पंकजः अरे! हमारे स्कूल में तो नहीं हुआ। तुमने पहले क्यों नहीं बताया ? अच्छा, यह बताओ यह नाटक खेला किसने ?

शिवानी: यही तो मजेदार बात है। मेरी कक्षा के बच्चों ने यह नाटक खेला।

पंकज: किसका अभिनय सबसे अच्छा था ?

शिवानी: क्या बताऊँ ? सभी एक से बढ़ कर एक थे।

पंकज:
....

शिवानी:
....

पाठ - 5

महाभारत काल के महर्षि

आपने 'महाभारत' का नाम सुना होगा। 'महाभारत' की कथाएँ अत्यधिक लोकप्रिय हैं। शायद आपने दूरदर्शन पर इसको देखा भी होगा। 'महाभारत' जैसे महाकाव्य के रचयिता महर्षि वेदव्यास थे।

महर्षि वेदव्यास
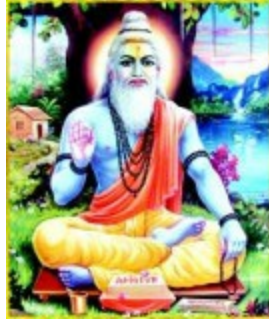
महर्षि वेदव्यास का जन्म यमुना नदी के किनारे एक छोटे से द्वीप में हुआ था। इनके पिता का नाम पराशर तथा माता का नाम सत्यवती था। व्यास के शरीर के रंग को देखते हुए इनका नाम कृष्ण रखा गया और द्वीप में पैदा होने के कारण इन्हें द्वैपायन कहा गया।

आरंभ में वेद एक ही था। व्यास ने इसका अध्ययन किया। मंत्रों के आधार पर उन्होंने वेदों को चार भागों में वर्गीकृत किया। इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चार वेद हो गए। व्यास जी ने वेदों को नया स्वरूप दिया इसलिए वे वेदव्यास कहलाए।

महर्षि वेदव्यास विद्वान और तपस्वी थे। इनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ महाभारत है। महाभारत में 18 पर्व हैं। महाभारत को पाँचवाँ वेद भी कहा जाता है। महाभारत की रचना उन्होंने लोक कल्याण की भावना से की थी। कहा जाता है- महाभारत को लिखने के लिए गणेश जी से कहा गया। गणेश जी ने कहा "मेरी एक शर्त है, मेरे लिखते समय मेरी लेखनी (कलम) रुकने न पाए, यदि यह रुक गई तो मैं लिखना बंद कर दूँगा" व्यास जी ने कहा, ठीक है। उन्होंने इस तरह के श्लोक बोले कि जितनी देर में गणेश जी श्लोक को समझ करके लिख पाते उतनी देर में व्यास जी अगला

श्लोक सोच लेते।

महाभारत के माध्यम से महर्षि वेदव्यास ने मनुष्य को सदाचार, धर्माचरण, त्याग, तपस्या, कर्तव्यपरायण तथा भगवान की भक्ति का संदेश दिया है। इस ग्रंथ द्वारा वेदव्यास जी ने यह बताया है कि मनुष्य कठिनाइयों का सामना किस प्रकार कर सकता है और उन पर विजय कैसे प्राप्त कर सकता है। महाभारत के वन पर्व में उन्होंने लिखा है-
"मनुष्य के पास सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख क्रमशः वैसे ही आते हैं, जैसे रथ के चक्के की तीली घूमती रहती है"।

महाभारत के शांति पर्व में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिया गया उपदेश-

"तुम पुरुषार्थ के लिए प्रयत्नशील रहो, पुरुषार्थ के बिना केवल भाग्य के बल पर राजा उद्देश्य हीन हो जाता है। राजा आवश्यकतानुसार कठोरता और कोमलता का सहारा ले। राजा को अपने स्वार्थ के कार्यों का परित्याग कर देना चाहिए। उसे वही कार्य करना चाहिए जो सभी के लिए हितकारी हो"।

उस समय सभी व्यक्ति वेदों का पाठ नहीं करते थे। धीरे-धीरे ऐसे लोगां◌े की संख्या बढ़ती गई। व्यास ने विचार किया कि बहुत संख्या में लोग भारत की संस्कृति से अनजान हैं। वेदव्यास ने पुराणों का संकलन किया और सभी के लिए सहज और सरल रूप में पुराणों की रचना की। महर्षि वेदव्यास की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं- महाभारत, अठारह पुराण तथा वेदांत दर्शन।

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

अठारह पुराणों में व्यास जी के द्वारा दो महत्त्वपूर्ण बातें बताई गई हैं। परोपकार से पुण्य एवं दूसरों को पीड़ित करने से पाप की प्राप्ति होती है।

महर्षि सुपंच सुदर्शन

महाभारत काल में ही महर्षि वेदव्यास के साथ महर्षि सुपंच सुदर्शन का भी नाम लिया जाता है। वे एक वैष्णव संत थे। इनका जन्म लगभग 3290 ई0 पू0 फाल्गुन माह में कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को वाराणसी में हुआ था। इनका बचपन का नाम सुदर्शन था। वे सुपंच के नाम से भी जाने जाते थे। सुपंच की शिक्षा-दीक्षा आचार्य करुणामय द्वारा हुई। इनका मन बचपन से ही भक्ति में अधिक लगता था। वे दैनिक क्रियाओं को करने के बाद घंटां◌े भजन और पूजा में लगे रहते थे। गुरु करुणामय ने उनके इस भाव को देखकर उन्हें ज्ञान, नीति एवं अध्यात्म की विशेष शिक्षा दी थी।

विद्या प्राप्त करने के बाद सुपंच सुदर्शन भक्ति और सत्य की खोज में लग गए। दीन, असहायों की सहायता और साधु सेवा को उन्होंने अपने जीवन का परम उद्देश्य बना लिया।

महर्षि सुपंच उच्च कोटि के संत थे। उन्होंने जो शिक्षाएँ दीं वे आज भी ग्रहण करने योग्य हैं-

ईश्वर से डरो इन्सान से नहीं।
बुद्धि, बल, रूप, सौंदर्य, धन का घमंड मत करो।
सदैव दूसरों का उपकार करो।
स्वाभिमान की हर कीमत पर रक्षा करो।
संसार का सुख भोगने में ही मत लगे रहो।
पारलौकिक आनंद की प्राप्ति का भी प्रयास करो।

महर्षि सुपंच सुदर्शन के आराध्य देव भगवान श्रीकृष्ण थे। इनका सारा जीवन परोपकार को समर्पित था। दीन, दुःखी व असहाय जन उनके पास शरण पाते थे।

महर्षि सुपंच सुदर्शन का आश्रम इटावा जनपद के पंचनदा टीले पर स्थित है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.*महर्षि व्यास का नाम वेदव्यास क्यों पड़ा* ?
2.*व्यास जी ने पुराणों में कौन-सी महत्त्वपूर्ण बातें बताई हैं* ?
3.*वेदव्यास ने किन ग्रन्थों की रचना की* ?
4.*महाभारत की रचना किसने की और लिखा किसने* ?
5.*महर्षि व्यास ने महाभारत की रचना किस उद्देश्य से की थी* ?
6.*महर्षि सुपंच सुदर्शन ने लोगों को क्या शिक्षा दी* ?
7. *सही* (√) *अथवा गलत* (x) *का निशान लगाइए -*

महर्षि वेदव्यास ने पुराणों का संकलन किया ।
महर्षि वेदव्यास का प्रसिद्ध ग्रंथ गीता है।
श्रीकृष्ण के उपदेश पुराणों में वर्णित हैं।
महर्षि सुपंच सुदर्शन भक्ति-भाव व शांति की खोज में लग गए।

8. *नीचे दिए गए प्रश्न का सही उत्तर चुन कर लिखिए-*

गुरु करुणामय ने सुपंच सुदर्शन को ज्ञान और नीति की शिक्षा दी क्योंकि-

(क) ***वे संत थे।*** (ख) ***वे गुरु का आदर करते थे।***

(ग) ***वे भजन पूजा में लगे रहते थे।*** (घ) ***वे विद्वान थे।***

योग्यता विस्तार

गाँव या मुहल्ले के समुचित विकास के लिए आप लोगों को क्या-क्या संदेश देंगे ? कम से कम पाँच संदेश अपनी कॉपी में लिखिए।

गुरु गोरखनाथ

भारत में समाज सुधार आंदोलनों में ऐसे अनेक महापुरुषों का योगदान रहा है जिन्होंने समाज में नैतिकता और आदर्श की स्थापना के लिए अथक प्रयास किए। ऐसे ही एक महान संत गुरु गोरखनाथ थे जो समग्र भारत में भ्रमण करते हुए धर्म और नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने में आजीवन लगे रहे।

गोरखनाथ का भारत के धार्मिक इतिहास में बड़ा महत्त्व है। विभिन्न विद्वानों ने गोरखनाथ का समय ईसा की नवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक माना है। गुरु गोरखनाथ मत्स्येंद्र नाथ के शिष्य एवं नाथ साहित्य एवं संप्रदाय के आरंभकर्ता माने जाते हैं। उन्होंने अपने विचारों एवं आदर्शों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए लगभग चालीस ग्रंथों की रचना की। गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में जीवन की अनुभूतियों का सघन चित्रण करते हुए गुरु-महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, कुंडलिनी जागरण, शून्य समाध्ि आदि का वर्णन किया है। गुरु गोरखनाथ ने सांप्रदायिक मान्यताओं को खारिज करते हुए जगत् में मानव सहित सभी जीवों, वनस्पतियों आदि से प्रेम और मैत्री का भाव धारण करने का उपदेश दिया। गुरु गोरखनाथ की रचनाओं में प्रखर सामाजिक चेतना एवं सामाजिक हित दिखलाई पड़ता है। गुरु गोरखनाथ समाज को बाँटने वाली शक्तियों से सावधान करते हैं और समाज में व्याप्त कुरीतियों और वाह्य आडंबरों पर आक्रमण करते हैं।

गोरखनाथ के आविर्भाव स्थान के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अधिकांश विद्वान इनका जन्म क्षेत्र जालंधर, पंजाब को मानते हैं। गुरु गोरखनाथ परिव्राजक संत थे और प्रगतिशील विचारों का पक्ष पोषण करते थे। गुरु गोरखनाथ ने लोकमंगल की भावना से बौद्ध, शैव, शाक्त आदि पूर्ववर्ती संप्रदायों को एकीकृत करके उनकी जटिलताओं को दूर करते हुए सरल एवं सादगीपूर्ण व्यवस्था का निर्माण कर धर्म को सर्वसुलभ बनाया। संतोष, अहिंसा एवं जीवों पर दया गोरखनाथ का मूल मंत्र था। गोरखनाथ का अभिमत था कि ध्ीर वही है जो

चित्त विकार के साधन सुलभ होने पर भी चित्त को विकृत नहीं होने देता।

"नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसो मन लै जोगी खेलै तब अंतरि बसै भंडारा। "

गोरखनाथ की एक पुरातन मूर्ति ओदाद्र, पोरबंदर, गुजरात के गोरखनाथ मठ में स्थापित है। इसी प्रकार गोरखनाथ जी का एक भव्य एवं विशाल मंदिर उत्तर प्रदेश के गोरखपुर नगर में स्थापित है। कहा जाता है कि इन्हीं के नाम पर इस जिले का नाम गोरखपुर पड़ा। नेपाल में एक जिला है गोरखा, इस जिले का नाम गोरखा भी इन्हीं के नाम पर पड़ा है। ऐसा माना जाता है कि गुरु गोरखनाथ यहाँ कुछ समय तक रहे थे। गोरखा जिले में एक गुफा है जहाँ गोरखनाथ के पग चिह्न और उनकी एक मूर्ति है।

यहाँ प्रति वर्ष वैशाख पूर्णिमा को एक उत्सव मनाया जाता है जिसे 'रोट महोत्सव' कहते हैं। उत्तर प्रदेश के गोरखनाथ मंदिर में भी प्रतिवर्ष मकर संक्रांति के दिन 'खिचड़ी महोत्सव' का आयोजन किया जाता है। कहा जाता है कि इन परंपराओं को गुरु गोरखनाथ ने ही आरंभ किया था।

गुरु गोरखनाथ ने जीवन की शुद्धता बनाए रखने पर बल दिया। जीवन की शुद्धता के लिए 'धन संचय' से दूर रहने की प्रेरणा गोरखनाथ के काव्य में स्पष्ट दिखाई देती है। गुरु गोरखनाथ एक महान रचनाकार भी थे। डॉ0 *पीतांबर दत्त बड़थ्वाल की खोज में इनके द्वारा रचित चालीस पुस्तकों का पता चला था। इनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकें हैं- सबदी, पंद्रहतिथि, मछिंद्र गोरखबोध, ग्यान चौंतिसा, शिष्ट पुराण, नवग्रह, गोरख वचन, अष्टचक्र।*

गुरु गोरखनाथ ने अपने जीवन काल में, 'त्याग में सुख है' के सिद्धांत पर चलते हुए भारत के गाँव-गाँव जाकर ऐश्वर्य और सुख भोग को मुक्ति मार्ग का बाधक और संतोष एवं सदाचार को मानव जीवन का मूल बताया। गाँव-गाँव में जाकर उपदेश देने के कारण इस महान तपस्वी की अमर वाणी लाखों भारतीयों हेतु प्रेरणा बन गई।

गुरु गोरखनाथ त्याग, साहस, शौर्य के साक्षात् प्रतीक थे। निःसंदेह इस महान गुरु के महान संदेश अनंत काल तक मानव को मर्यादित एवं आदर्श जीवनयापन की प्रेरणा देते रहेंगे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. *गोरखनाथ किसके शिष्य थे?*

2. *गोरखनाथ की रचनाओं में जीवन की किन अनुभूतियों का वर्णन किया गया है?*

3. *गुरु गोरखनाथ ने धर्म को सर्वसुलभ किस प्रकार बनाया*?
4. *गोरखनाथ का मूल मंत्र क्या था*?
5. *गोरखनाथ का प्रसिद्ध मंदिर कहाँ स्थित है*?
6. *जीवन की शुद्धता के लिए किससे दूर रहने की प्रेरणा गोरखनाथ ने दी है*?

एकलव्य

एक पेड़ पर कुछ बच्चों को सिन्दूर जैसा लाल एक फल लटकता हुआ दिखाई पड़ा। सभी बालक उसे पाने के लिए चेष्टा करने लगे किन्तु फल इतनी ऊँचाई पर था कि किसी प्रकार हाथ नहीं लगा। उन्हीं में से एक बालक बोला, "तुम लोग व्यर्थ क्यों समय बरबाद कर रहे हो, तीर तो हाथ में है क्यों नहीं गिरा लेते"। बात कहते ही तीरों की बौछार होने लगी। किसी का भी तीर फल पर नहीं लगा। पेड़ में भी तीरों का समूह धँसकर लटकने लगा। वह बालक खड़ा-खड़ा सारा तमाशा देखता रहा। अन्त में उस बालक ने एक तीर तानकर चलाया और पका फल टप से जमीन पर गिर पड़ा। इससे टोली में उसकी धाक जम गई। बच्चों आप जानते हैं कि वह बालक कौन था? वह बालक एकलव्य था।

हस्तिनापुर के निकट वन में एक बस्ती का सरदार हिरण्यधेनु था। इसका प्रभाव अधिक था इसलिए समूह के लोग उन्हें राजा कहा करते थे। एकलव्य उन्हीं का पुत्र था। एकलव्य ने मन लगाकर अभ्यास करना आरम्भ किया। दिन-दिन भर जंगल में सूक्ष्म निशानों पर तीर चलाने का अभ्यास किया करता था और कुछ दिनों बाद तीर चलाने में उसकी बराबरी करने वाला हस्तिनापुर के आस-पास कोई रह नहीं गया। एकलव्य और भी अधिक निपुणता प्राप्त करना चाहता था परन्तु कोई साधन दिखाई न देता था।

इसी बीच उसे पता चला कि हस्तिनापुर में राजकुमारों को बाण-विद्या की शिक्षा देने के लिए कोई बड़े आचार्य आए हैं, इनके समान बाण-विद्या में दक्ष उस समय कोई नहीं था। उसके मन में आया कि मैं भी क्यों न उन्हीं से चलकर सीखूँ, पर तुरन्त ही उसने सोचा कि वे तो राजकुमारों के गुरु हैं, उन्हें सिखाते हैं, मैं निर्धन हूँ, मुझे वह सिखाएंगे कि नहीं। यह शंका उसके मन में बनी रही। फिर भी उसने भाग्य की परीक्षा लेनी चाही और वह हस्तिनापुर के लिए चल पड़ा।

हस्तिनापुर में जो गुरु राजकुमारों को बाण चलाने की कला सिखाते थे, उनका नाम था द्रोण। आरम्भ से ही उन्होंने शस्त्र चलाना सीखा था और वे बाण-विद्या के आचार्य थे। इसलिये उनका नाम द्रोणाचार्य हो गया। कहा जाता है, उनके जैसा बाण चलाने वाला कोई नहीं था। वे हस्तिनापुर के राजकुमार दुर्योधन, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि को बाण-विद्या सिखाते थे। उन्हीं के साथ-साथ और भी दूसरे स्थानों के राजकुमार आचार्य की ख्याति सुनकर धनुर्विद्या सीखने हस्तिनापुर आकर उनके शिष्य बन गए थे।

दोपहर के समय कुरु तथा पाण्डु वंश के राजकुमार और अन्य प्रान्तों के राजकुमार

बाण चलाने का अभ्यास कर रहे थे। रंगभूमि के भीतर जाने का साहस न होने के कारण एकलव्य वहाँ पहुँचने के बाद वहीं खड़ा-खड़ा राजकुमारों का अभ्यास देखने लगा और देखने में इतना लीन हो गया कि अपने को भी भूल गया।

राजकुमारों में बाण चलाने में अर्जुन सबसे श्रेष्ठ थे। एकलव्य ने देखा कि एक खूँटे पर मिट्टी की एक चिडिया रखी है तथा थोड़ी दूर पर दूसरे खूँटे पर तीर की एक चूड़ी लगी है। निश्चित दूरी से इस प्रकार तीर चलाना है कि वह चूड़ी के भीतर होता हुआ चिडिया की आँख भेद दे। सभी राजकुमार द्रोण का संकेत पाकर तीर चला रहे थे, परन्तु किसी का भी तीर निश्चित स्थान पर नहीं लग रहा था। इधर राजकुमार अपने अभ्यास में इतने लीन थे कि उन्होंने एकलव्य को नहीं देखा। अन्त में जब एक राजकुमार का तीर आँख छूकर पृथ्वी पर गिरा तो एकलव्य से न रहा गया। उसके मुख से निकल पड़ा, "वाह-वाह! केवल थोड़ी कुशलता की और आवश्यकता थी।"

यह सुनकर सबका ध्यान द्वार की ओर गया वहाँ उन्होंने देखा एक युवक खड़ा है। चौड़ा कन्धा है, शरीर के सब अंग सुडौल मानो किसी साँचे में ढले हैं। तीर और धनुष भी है किन्तु शरीर पर केवल धोती है। द्रोणाचार्य की भी दृष्टि उधर गई। सब लोग एकटक उधर देखने लगे। आचार्य ने कुछ क्षण के बाद उसे संकेत से बुलाया। एकलव्य धीरे से उनके पास गया और चरण छूकर प्रणाम करके खड़ा हो गया। द्रोणाचार्य ने ध्यान से उसे सिर से पाँव तक देखा और पूछा, "तुम निशाना लगा सकते हो"? यह प्रश्न सुनकर उसने कहा- "हाँ मैं लगा सकता हूँ।" और फिर कुछ पूछे बिना ठीक स्थान पर जाकर उसने तीर चलाया और तीर आँख बेधता हुआ निकल गया। सब लोग चकित हो गए। द्रोणाचार्य के पूछने पर उसने अपना नाम एकलव्य बताया।

द्रोणाचार्य इस बालक के कौशल से प्रसन्न हुए, परिचय पूछने के बाद आने का कारण पूछा। एकलव्य ने सब बताकर धुनर्विद्या सीखने की अभिलाषा व्यक्त की। द्रोणाचार्य ने इस विषय में अपनी विवशता व्यक्त की। एकलव्य की सारी आशाएँ क्षणभर में नष्ट हो गई। बड़ी निराशा और दुःख भरे स्वर में उसने कहा, "मैं तो आपको गुरु मान चुका हूँ। इतना कहकर उनके चरण छूकर वह चल दिया।"

जंगल में एक स्वच्छ स्थान पर उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर स्थापित की। वह प्रातःकाल और संध्या समय उसकी पूजा करता और दिन भर बाण चलाने का अभ्यास करता।

बहुत दिनों के बाद जब राजकुमार बाण-विद्या में निपुण हो गए तब सब लोग जंगल मे शिकार खेलने गए। घोड़े पर ये लोग एक हिरण का पीछा कर रहे थे कि अचानक

बाणों की वर्षा हुई और जो जहाँ था वहीं रह गया। राजकुमार घोड़ों से उतरे। उन्होंने देखा कि घोड़े के पैरों के चारों ओर बाण पृथ्वी में घुसे हैं। घोड़े चल नहीं सकते। आगे बढ़ने पर जटा-धारी एक युवक मिला जो एक मूर्ति के सम्मुख बैठा था। राजकुमारों ने पूछा, "श्रीमन्! आपने धनुर्विद्या कहाँ से सीखी?" एकलव्य ने कहा, "आप मूर्ति नही पहचानते? यह द्रोणाचार्य की मूर्ति है यही बाण-विद्या के हमारे गुरु हैं।"

राजकुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि द्रोणाचार्य ने उनसे कहा था कि तुम लोगो के अतिरिक्त हम किसी को बाण विद्या नहीं सिखाते। लौटकर उन्होंने सारी कथा आचार्य को सुनाई। अर्जुन बहुत दुःखी हुए, क्योंकि वे समझते थे कि मेरे समान बाण चलाने वाला कोई नहीं है। द्रोणाचार्य ने उन्हें समझाया-बुझाया और सबको लेकर उस युवक से मिलने गये।

एकलव्य ने द्रोणाचार्य को देखा और भक्ति तथा श्रद्धा से उनके चरणों पर गिर गया। उसने कहा- "आप मुझे नहीं पहचानेंगे। मैं वही एकलव्य हूँ, जिसे आपने शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया था। आपको तो मैंने गुरु मान लिया था। यह आपकी प्रतिमा है। आपकी कृपा से मैंने आज बाण चलाने में सफलता प्राप्त कर ली है।"

द्रोणाचार्य ने सोचा कि मैंने अर्जुन को आशीर्वाद दिया था कि तुम्हारे समान संसार में तीर चलाने वाला दूसरा कोई न होगा। द्रोणाचार्य ने कहा- "तुम्हारी कला और गुरु भक्ति देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अब हमें गुरु-दक्षिणा दो।" एकलव्य ने कहा- "आज्ञा दीजिए गुरुवर!" द्रोणाचार्य ने कहा- "मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल अपने दाहिने हाथ का अँगूठा दे दो।" एकलव्य बोला- "यह तो आपने कुछ नहीं माँगा, लीजिए।" इतना कहकर उसने अपने दाहिने हाथ का अँगूठा काटकर उनके चरणों पर रख दिया।

सच है- 'श्रद्धया लभते ज्ञानम्' - "श्रद्धा से ज्ञान की प्राप्ति होती है"।

अभ्यास

1.*निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-*

(क)पेड़ से फल गिराने के लिए एकलव्य ने बालकों को कैसे प्रोत्साहित किया?

(ख)हिरण्यधेनु को बस्ती का सरदार क्यों कहा जाता था?

(ग)द्रोण का नाम द्रोणाचार्य कैसे पड़ा?

(घ)एकलव्य ने बाण-विद्या सीखने का क्या उपाय किया?

2.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क)द्रोणाचार्य के समान बाण-विद्या में कोई .... नहीं था।

(ख)द्रोणाचार्य .... के .... को बाण-विद्या सिखाते थे।

(ग)एकलव्य ने धनुर्विद्या सीखने की .... व्यक्त की।

(घ)एकलव्य ने गुरु दक्षिणा में .... काटकर गुरु के चरणों में रख दिया।

3.सही कथन के सामने (√) का और गलत कथन के सामने (x) का निशान लगाइये-

(क)द्रोणाचार्य बालक के कौशल से अप्रसन्न हुए।

(ख)एकलव्य ने कहा मैं आपको गुरु मान चुका हूँ।

(ग)द्रोणाचार्य को एकलव्य की गुरुभक्ति से प्रसन्नता हुई।

योग्यता विस्तार -

गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य को धनुर्विद्या की शिक्षा नहीं दी और उलटे गुरु दक्षिणा में दाहिने हाथ

का अँगूठा माँग लिया।'' इस घटना के संबंध में अपने विचार लिखिए।

पाठ - 8

भारत के महान चिकित्सक (सुश्रुत, चरक)

सृष्टि के आरम्भ से ही मानव अपनी आयु तथा अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहा है। समय-समय पर विशिष्ट व्यक्तियों को जिन वस्तुओं से कोई अनुभव हुआ उन सिद्धान्तों के संकलन से ऐसे ग्रन्थों का निर्माण हुआ जो मानव के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुए। 'आयुर्वेद' भी ऐसी ही एक प्राचीन चिकित्सा पद्धति है जिसमें स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धान्तो की जानकारियाँ दी गई हैं।

आयु सम्बन्धी प्रत्येक जानने योग्य ज्ञान (वेद) को आयुर्वेद कहते हैं।

'आयुर्वेद' सम्बन्धी सिद्धान्तों का क्रमबद्ध संकलन कर ऋषियों ने अनेक संहिताओं का निर्माण किया है। इन संहिताओं में सुश्रुत संहिता, शल्य तन्त्र प्रधान और चरक संहिता कायचिकित्सा प्रधान ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के रचयिता क्रमशः सुश्रुत तथा चरक हैं।

उनके समय में न आज जैसी प्रयोगशालाएँ थीं, न यन्त्र और न ही चिकित्सा सुविधाएं। अपने ज्ञान और अनुभव से उन्होंने चिकित्सा के क्षेत्र में ऐसे उल्लेखनीय कार्य किए जिनकी नींव पर आज का चिकित्सा विज्ञान सुदृढ़ता से खड़ा है। आइए चिकित्सा के क्षेत्र में पथप्रदर्शक माने जाने वाले ऐसे ही दो महान चिकित्सकों के बारे में जानें।

सुश्रुत

मध्य रात्रि का समय था। किसी के जोर से दरवाजा खटखटाने से सुश्रुत की नींद खुल गयी।

"बाहर कौन है ?" वृद्ध चिकित्सक ने पूछा, फिर दीवार से जलती हुयी मशाल उतारी और दरवाजे पर जा पहुँचे।

"मैं एक यात्री हूँ," किसी ने पीड़ा भरे स्वर में उत्तर दिया। मेरे साथ दुर्घटना घट गई है। मुझे आप के उपचार की आवश्यकता है।

यह सुनकर सुश्रुत ने दरवाजा खोला। सामने एक आदमी झुका हुआ खड़ा था, उसकी आँख से आँसू बह रहे थे और कटी नाक से खून।

सुश्रुत ने कहा, "उठो बेटा भीतर आओ, सब ठीक हो जाएगा, अब शान्त हो जाओ।"

वह अजनबी को एक साफ-सुथरे कमरे में ले गए। शल्य चिकित्सा के उपकरण दीवारों पर टँगे हुए थे। उन्होंने बिस्तर खोला और उस अजनबी से बैठने के लिए कहा, फिर उसे अपना चोंगा उतारने और दवा मिले पानी से मुँह धोने के लिये कहा। चिकित्सक ने अजनबी को एक गिलास में कुछ द्रव्य पीने को दिया और स्वयं शल्य चिकित्सा की तैयारी करने लगे।

बगीचे से एक बड़ा सा पत्ता लेकर उन्होंने अजनबी की नाक नापी। उसके बाद दीवार से एक चाकू और चिमटी लेकर उन्हें आग की लौ में गर्म किया। उसी गर्म चाकू से अजनबी के गाल से कुछ माँस काटा । आदमी कराहा लेकिन उसकी अनुभूतियाँ नशीला द्रव्य पीने से कुछ कम हो गई थीं।

गाल पर पट्टी बाँध कर सुश्रुत ने बड़ी सावधानी से अजनबी की नाक में दो नलिकाएं डाली। गाल से काटा हुआ माँस और दवाइयाँ नाक पर लगाकर उसे पुनः आकार दे दिया, फिर नाक पर घुँघची व लाल चंदन का महीन बुरादा छिड़क कर हल्दी का रस लगा दिया और पट्टी बाँध दी। अंत में सुश्रुत ने उस अजनबी को दवाइयों और बूटियो की सूची दी जो उसे नियमित रूप से लेनी थी। उसे कुछ सप्ताह बाद वापस आने को कहा जिससे वह उसे देख सकें।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व सुश्रुत ने जो किया था उसी का विकसित रूप आज की प्लास्टिक सर्जरी है। सुश्रुत को पूरे संसार में आज भी 'प्लास्टिक सर्जरी' का जनक कहा जाता है।

सुश्रुत का जन्म छः सौ वर्ष ईसा पूर्व हुआ था। वह वैदिक ऋषि विश्वामित्र के वंशज थे। उन्होंने वैद्यक और शल्य चिकित्सा का ज्ञान वाराणसी में दिवोदास धनवन्तरि के आश्रम में प्राप्त किया था।

वे पहले चिकित्सक थे जिन्होंने उस शल्य क्रिया का प्रचार किया जिसे आज सिजेरियन ऑपरेशन कहते हैं। वह मूत्र नलिका में पाये जाने वाले पत्थर निकालने में, टूटी हड्डियों को जोड़ने और मोतियाबिन्द की शल्य चिकित्सा में दक्ष थे।

उन्होंने शल्य चिकित्सकों को ऑपरेशन से पहले प्रयोग में आने वाले उपकरण गर्म करने के लिये कहा जिससे कीटाणु मर जाएं। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि बीमार को ऑपरेशन से पहले नशीला द्रव्य पिलाया जाए। चिकित्सक आज भी इसका प्रयोग निश्चेतक (एनेस्थिसिया) के रूप में करते हैं।

सुश्रुत एक अच्छे अध्यापक भी थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था-

सुश्रुत के शल्य चिकित्सा के उपकरण
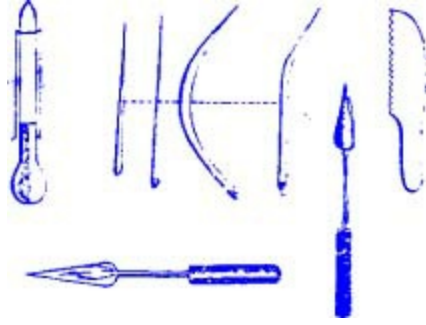
"अच्छा वैद्य वही है जो सिद्धान्त और अभ्यास दोनों में पारंगत हो।"

वे अपने शिष्यों से कहा करते थे कि वास्तविक शल्य चिकित्सा से पहले जानवरों की लाशों पर शल्य चिकित्सा का अभ्यास करना चाहिए।

अपनी पुस्तक 'सुश्रुत संहिता' में उन्होंने विभिन्न प्रकार के 101 चिकित्सा उपकरणो की सूची दी है। आज भी उन यंत्रों के समान यंत्र वर्तमान चिकित्सक प्रयोग में लाते हैं। वह चिमटियों के नाम उन जानवरों या पक्षियों पर रखते थे जिनकी शक्ल से वे मिलते थे, जैसे-क्रोकोडाइल फारसेप्स, हाकबिल फारसेप्स आदि।

चरक

प्राचीन काल में जब चिकित्सा विज्ञान की इतनी प्रगति नहीं हुई थी, गिने-चुने चिकित्सक ही हुआ करते थे। उस समय चिकित्सक स्वयं ही दवा बनाते, शल्य क्रिया करते और रोगों का परीक्षण करते थे। तब आज जैसी प्रयोगशालाएँ, परीक्षण यन्त्र व चिकित्सा सुविधायें नहीं थीं, फिर भी प्राचीन चिकित्सकों का चिकित्सा ज्ञान व चिकित्सा स्वास्थ्य के लिए अति लाभकारी थी। दो हजार वर्ष पूर्व भारत में ऐसे ही चिकित्सक चरक हुए हैं, जिन्होंने आयुर्वेद चिकित्सा, के क्षेत्र में शरीर विज्ञान, निदान शास्त्र और भ्रूण विज्ञान पर चरक संहिता नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक को आज भी चिकित्सा जगत् में बहुत महत्व दिया जाता है।
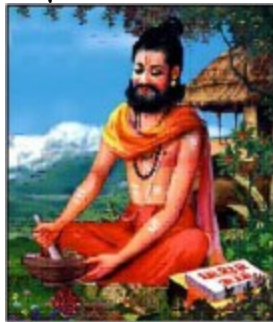
चरक वैशम्पायन के शिष्य थे। इनके 'चरक संहिता' ग्रन्थ में भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश का ही अधिक वर्णन होने से यह भी उसी प्रदेश के प्रतीत होते हैं।

कहा जाता है कि चरक को शरीर में जीवाणुओं की उपस्थिति का ज्ञान था, परन्तु इस विषय पर उन्होंने अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है। चरक को आनुवंशिकी के मूल सिद्धान्तों की भी जानकारी थी। चरक ने अपने समय में यह मान्यता दी थी कि बच्चो

में आनुवंशिक दोष जैसे-अंधापन, लंगड़ापन जैसी विकलांगता माता या पिता की किसी कमी के कारण नहीं बल्कि डिम्बाणु या शुक्राणु की त्रुटि के कारण होती थी। यह मान्यता आज एक स्वीकृत तथ्य है।
उन्होंने शरीर में दाँतों सहित 360 हड्डियांे का होना बताया था। चरक का विश्वास था कि हृदय शरीर का नियंत्रण केन्द्र है। चरक ने शरीर रचना और भिन्न अंगों का अध्ययन किया था। उनका कहना था कि हृदय पूरे शरीर की 13 मुख्य धमनियों से जुड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त सैकड़ों छोटी-बड़ी द्दमनियाँ हैं जो सारे ऊतकों को भोजन रस पहुँचाती हैं और मल व व्यर्थ पदार्थ बाहर ले आती हैं। इन धमनियों में किसी प्रकार का विकार आ जाने से व्यक्ति बीमार हो जाता है।
प्राचीन चिकित्सक आत्रेय के निर्देशन में अग्निवेश ने एक वृहत संहिता ईसा से आठ सौ वर्ष पूर्व लिखी थी। इस वृहत संहिता को चरक ने संशोधित किया था जो चरक संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस पुस्तक का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। आज भी सुश्रुत संहिता तथा चरक संहिता की उपलब्धि इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ये अपने-अपने विषय के सर्वोत्तम ग्रन्थ हैं। ऐसे ही प्राचीन चिकित्सकों की खोज रूपी नींव पर आज का चिकित्सा विज्ञान सुदृढ़ रूप से खड़ा है। इन संहिताओं ने नवीन चिकित्सा विज्ञान को कई क्षेत्रों में उल्लेखनीय मार्ग दर्शन दिया है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. सुश्रुत ने पीड़ित यात्री की किस प्रकार चिकित्सा की ?
2. सुश्रुत किस प्रकार की शल्य चिकित्सा में दक्ष थे ?
3. सुश्रुत ने अपने शिष्यों से क्या कहा ?
4. 'आयुर्वेद' किसे कहते हैं ?
5. चरक ने आनुवंशिकी के संबंध में क्या मान्यता दी थी ?
6. सुश्रुत और चरक ने किन ग्रंथों की रचना की ? ये किस क्षेत्र में उपयोगी हैं ?
7. सुश्रुत को 'प्लास्टिक सर्जरी का जनक' क्यों कहा जाता है ?

8.नीचे लिखे वाक्यों पर सही (√) अथवा गलत (x) का चिह्न लगाइए-

(क)सुश्रुत एक सफल राजनीतिज्ञ थे।
(ख)सुश्रुत को प्लास्टिक सर्जरी का जनक कहा जाता है।
(ग)चरक को शरीर में जीवाणुओं की उपस्थिति का ज्ञान था।
(घ)चरक जादू से मरीजों की चिकित्सा किया करते थे।

9.सही विकल्प चुनिए-

चरक ने शरीर में दाँतों सहित हड्डियों की संख्या-

(क)चार सौ बतायी
(ख)तीन सौ पैंसठ बतायी
(ग)तीन सौ साठ बतायी
(घ)तीन सौ अस्सी बतायी

सुश्रुत ने ऑपरेशन के पहले उपकरण को गर्म करने को कहा जिससे-

(क)*कीटाणु समाप्त हो जाए*
(ख)*धार तेज हो जाए*
(ग)*उपकरण चमकीला हो जाए*
(घ)*मरीज को कष्ट न हो*

10.*अगर आपको चिकित्सक बनने का अवसर मिला तो आप किस प्रकार के रोगों का इलाज करना चाहेंगे और क्यों* ? *मरीजों के इलाज के समय आप किन-किन बातों का ध्यान प्रमुख रूप से रखेंगे* ?

11.*बड़ों से पता कीजिए-*

निश्चेतक क्या है ?
प्लास्टिक सर्जरी किसे कहते हैं ?

12.*अपने गुरुजी /माता-पिता अथवा बड़े भाई-बहन के साथ नजदीकी प्राथमिकस्वास्थ्य केन्द्र पर जाएं और पता करें की चिकित्सक किस प्रकार शल्य क्रिया करते हैं? अपने अनुभवों को भी लिखें।*

13.*बहुत सारी बीमारियाँ होने पर हमारी माँ, नानी-दादी घरेलू नुस्खों से ही इलाज कर दिया करती हैं। पता कीजिए और सूची बनाइए कि आपके घर में ऐसी घरेलू दवाइयाँ कौन-कौन सी हैं* ?

भारत के महान खगोलविद्

हजारों वर्षों से वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण्ड के रहस्यों से पर्दा हटाने का प्रयास किया जा रहा है। नक्षत्रों, सूर्य, आकाशगंगाओं की उत्पत्ति, बनावट आदि विषयों पर निरन्तर खोज जारी है। आधुनिक वैज्ञानिकों के इन प्रयासों पर 2500 वर्ष पूर्व भारतीय खगोलविदों ने अपने चिंतन द्वारा ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए हैं जिनसे लोग आज भी चकित हैं। भारतीय खगोलविदों में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, सवाई जयसिंह आदि प्रमुख हैं।

आर्यभट्ट

1975 ई0 के 19 अप्रैल का दिन भारतीय इतिहास का स्वर्णिम दिन था। इस दिन भारत का सबसे पहला कृत्रिम उपग्रह छोड़ा गया। इसका नाम रखा गया आर्यभट्ट। इस उपग्रह के नाम से सम्बन्धित कहानी है एक महान गणितज्ञ और खगोल वैज्ञानिक की। जिसका नाम था आर्यभट्ट।

बचपन से ही आर्यभट्ट आकाश में तारों को अपलक निहारते रहते थे। उन्हें लगता कि आकाश में ढेरों रहस्य छिपे हैं। उनमें इन रहस्यों को जानने की इच्छा बलवती होती गए। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उन्होंने शिक्षा के महान केन्द्र नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। यहाँ वे खगोल विज्ञान पर जानकारियाँ जुटाने में लग गए। गहन अध्ययन के बाद उन्होंने 'आर्यभट्टीय' नामक ग्रन्थ की रचना संस्कृत श्लोकों में की। यह ग्रन्थ खगोल विज्ञान की एक उत्कृष्ट रचना है।
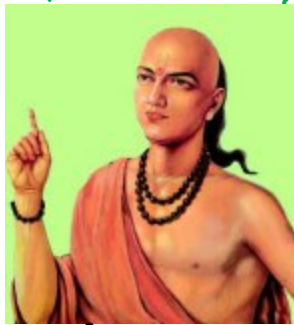
पुस्तक से प्रभावित होकर तत्कालीन गुप्त शासक 'बुद्धदेव' ने उन्हें नालन्दा विश्वविद्यालय का प्रद्दान (कुलपति) बना दिया।

उनके निष्कर्षों के प्रमुख तथ्य

पृथ्वी गोल है और वह अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे दिन और रात होते हैं।
चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है। उसका अपना प्रकाश नहीं है।
सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण के समय राहु द्वारा सूर्य या चन्द्रमा को निगल जाने की धारणा

अंधविश्वास है।
ग्रहण एक खगोलीय घटना है।

आगे चल कर आर्यभट्ट ने एक और पुस्तक 'आर्यभट्ट सिद्धान्त' के नाम से लिखी। यह पुस्तक दैनिक खगोलीय गणनाओं और अनुष्ठानों (धार्मिक कृत्यों) के लिए शुभ मुहूर्त निश्चित करने के काम आती थी। आज भी पंचांग (कैलेण्डर) बनाने के लिए आर्यभट्ट की खगोलीय गणनाओं का उपयोग किया जाता है। निःसन्देह आर्यभट्ट प्राचीन भारतीय विज्ञान और खगोलशास्त्र का प्रकाशवान नक्षत्र है।

वराहमिहिर

सम्राट विक्रमादित्य ने एक बार अपने राज ज्योतिषी से राजकुमार के भविष्य के बारे में जानना चाहा। राज ज्योतिषी ने दःुखी स्वर में भविष्यवाणी की कि अपनी उम्र के अठारहवें वर्ष में पहुँचने पर राजकुमार की मृत्यु हो जाएगी। राजा को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने आक्रोश में राज ज्योतिषी को कुछ कटुवचन भी कह डाले, लेकिन हुआ वही, ज्योतिषी के बताए गए दिन को एक जंगली सुअर ने राजकुमार को मार दिया। राजा और रानी यह समाचार सुनकर शोक में डूब गये। उन्हें राज ज्योतिषी के साथ किए अपने व्यवहार पर बहुत पश्चाताप हुआ। राजा ने ज्योतिषी को अपने दरबार में बुलवाया और कहा-"राज ज्योतिषी मैं हारा आप जीते।" इस घटना से राज ज्योतिषी भी बहुत दुखी थे। पीड़ा भरे शब्दों में उन्होंने कहा -"महाराज, मैं नहीं जीता। यह तो ज्योतिष और खगोलविज्ञान की जीत है।" इतना सुनकर राजा बोले-" ज्योतिषी जी, इस घटना से मुझे विश्वास हो गया है कि आप का विज्ञान बिलकुल सच है। इस विषय में आपकी कुशलता के लिये मैं आप को मगध राज्य का सबसे बड़ा पुरस्कार 'वराह का चिह्न' प्रदान करता हूँ। उसी समय से ज्योतिषी मिहिर को लोग वराहमिहिर के नाम से पुकारने लगे।
वराहमिहिर के बचपन का नाम मिहिर था। उन्हें ज्योतिष की शिक्षा अपने पिता से मिली। एक बार महान खगोल विज्ञानी और गणितज्ञ आर्यभट्ट पटना (कुसुमपुर) में कार्य कर रहे थे। उनकी ख्याति सुनकर मिहिर भी उनसे मिलने पहुँचे। वह आर्यभट्ट से इतने प्रभावित हुए कि ज्योतिष और खगोल ज्ञान को ही उन्हांेने अपने जीवन का ध्येय बना लिया। मिहिर अपनी शिक्षा पूरी करके उज्जैन आ गए। यह विद्या और संस्कृति का केन्द्र था।उनकी विद्वता से प्रभावित होकर गुप्त सम्राट विक्रमादित्य ने मिहिर को अपने नौ रत्नांे में शामिल कर लिया और उन्हें 'राज ज्योतिषी' घोषित कर दिया।
वराहमिहिर वेदों के पूर्ण जानकार थे। हर चीज को आँख बन्द करके स्वीकार नही करते थे। उनका दृष्टिकोण पूरी तरह से वैज्ञानिक था। वराहमिहिर ने पर्यावरण विज्ञान (इकोलॉजी), जल विज्ञान (हाइड्रोलॉजी) और भू-विज्ञान (जिओलॉजी) के सम्बन्ध में कुछ महŸवपूर्ण तथ्य उजागर कर आगे के लोगों को इस विषय में चिन्तन को एक दिशा दी।

वराहमिहिर द्वारा की गयी प्रमुख टिप्पणियाँ-

"कोई न कोई ऐसी शक्ति जरूर है जो चीजों को जमीन से चिपकाये रखती है।" (बाद में इसी कथन के आधार पर गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की खोज की गयी)

"पौधे और दीमक इस बात की ओर इंगित करते हैं कि जमीन के नीचे पानी है।"

वराहमिहिर की प्रमुख रचनाएँ-

पंच सिद्धान्तिका

बृहतसंहिता

बृहज्जाक

अपनी पुस्तकों के बारे में वराहमिहिर का कहना था- "ज्योतिष विद्या एक अथाह सागर है और हर कोई इससे आसानी से पार नहीं पा सकता। मेरी पुस्तक एक सुरक्षित नाव है, जो इसे पढ़ेगा उसे यह पार ले जायेगी।" उनका यह कथन कोरी शेखी नहीं है, बल्कि आज भी ज्योतिष के क्षेत्र में उनकी पुस्तक को "ग्रन्थरत्न" समझा जाता है।

सवाई जयसिंह

ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियों पर बने आमेर किले के ऊपर आकाश बड़ा सम्मोहक लग रहा था। किले की छत से एक राजकुमारी और राजा आकाश में खिले चाँद-तारों को देख रहे थे। आकाश को निहारते हुये राजकुमारी ने पूछा "तारे और चन्द्रमा यहाँ से कितनी दूर हैं?" हालाँकि राजा को खगोलशास्त्र में रुचि थी, लेकिन इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। राजा ने तय किया कि वे इस प्रश्न के उत्तर की खोज अवश्य करेंगे। यह उनके जीवन की परिवर्तनकारी घटना साबित हुई। बाद में सवाई जयसिंह महान खगोलविद् और गणितज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हुए।

सवाई जयसिंह ने 13 वर्ष की उम्र में आमेर की राजगद्दी सँभाली। पहले इनका नाम जयसिंह था।उन्होंने 1701 में मराठों को युद्ध में हराकर विशालगढ़ जीत लिया था। उनकी इस विजय पर खुश होकर औरंगजेब ने उन्हें सवाई की उपाधि से सम्मानित

किया। 'सवाई' का अर्थ हैं वह एक व्यक्ति जो क्षमता में दूसरों से सवाया हो।
धीरे-धीरे राजा जयसिंह ने अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत कर ली। साथ में खगोलविद और वास्तुकार के रूप में भी ख्याति प्राप्त की। वे खगोलविदों को दरबार में निमंत्रण देते और गोष्ठियाँ करवाते। उनका लक्ष्य खगोलशास्त्र का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना था। राजा जयसिंह ने खगोल पर पुस्तकें, संहिताएँ, सारणियाँ और सूची इत्यादि पुर्तगाल, अरब और यूरोप से इकट्ठा कीं। कई पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद कराया और उन्हें संस्कृत में नाम भी दिये।

कुछ अनुवादित संस्कृत पुस्तकें-

पुस्तक का नाम	संस्कृत अनुवाद
टालेमी की एलमाजेस्ट	• सिद्धान्त सूरी कौस्तम
उलुगबेग की जिजउलुगबेगी	• तुरूसुरणी
ला हीरे की टैबलि एस्ट्रोनामिका	• मिथ्या जीव छाया

राजा सवाई जयसिंह ने खगोलीय पर्यवेक्षणों के लिये यूरोप से दूरबीन मँगाई और फिर यहाँ दूरबीनांे का निर्माण शुरू कर दिया।
सन् 1724 ई0 में दिल्ली में एक वेधशाला का निर्माण किया गया। इसे नाम दिया गया- जन्तर-मन्तर । इसे बनाने में राजा जयसिंह ने पंडित विद्याधर भट्टाचार्या से सलाह ली। बाद में इन्होंने जयपुर शहर की डिजाइन बनाने में भी सहायता की। उन दिनों यूरोप में पीतल के छोटे उपकरणों का प्रचलन था, परन्तु राजा जयसिंह ने ईंट-चूने के विशाल उपकरण बनवाए।
राजा सवाई जयसिंह की वेधशाला में उन लोगों का स्वागत था जो खगोल विज्ञान पढ़ना चाहते थे। जन्तर-मन्तर बनवाने का उद्देश्य विज्ञान को लोकप्रिय बनाना था। यह उस समय और भी महत्वपूर्ण था क्योंकि तब अपने देश में विज्ञान प्रयोगशालाओं का अभाव था।
सवाई जयसिंह ने गहन अध्ययन व शोध के बाद खगोल विज्ञान के क्षेत्र में कई नई जानकारियाँ दीं। जयपुर व दिल्ली की वेधशाला (जन्तर-मन्तर) उनका अनुपम उपहार हैं।

अभ्यास

1.आर्यभट्ट ने गणित में क्या योगदान दिया ?
2.पृथ्वी के बारे में वराहमिहिर द्वारा की गयी टिप्पणी का उल्लेख कीजिए।
3.जन्तर-मन्तर क्या है और कहाँ है ?
4.सही तथ्यों के सामने सही (√) तथा गलत के सामने गलत (x) का निशान लगाइए-
(अ) आर्यभट्ट हर बात को वैज्ञानिक आधार पर परखने में विश्वास करते थे।
(ब) दिल्ली की वेधशाला का नाम जन्तर-मन्तर नहीं है।
(स) दूरबीन से दूर की चीज देखी जा सकती है।
(द) आर्यभट्ट, पाणिनि, सवाई जयसिंह सभी खगोलविद् हैं।

5.नीचे दिये गये विकल्पों में से सही उत्तर चुनकर लिखिए-
वराहमिहिर अपनी शिक्षा पूरी करके उज्जैन आ गए क्योंकि-

1.वह विद्या और संस्कृति का केन्द्र था।
2.वह एक बड़ा शहर था।
3.वहाँ उनके परिवार जन रहते थे।
4.वहाँ रोजगार की पर्याप्त सम्भावनाएँ थीं।

6.किसने कहा-

(क)सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के समय राहु द्वारा सूर्य या चन्द्रमा को निगल जाने की धारणा
अंधविश्वास है।
(ख)राज-ज्योतिषी मैं हारा, आप जीते।
(ग)पौधे और दीमक इस बात की ओर इंगित करते हैं कि जमीन के नीचे पानी है।
(घ)चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है, उसका अपना प्रकाश नहीं है।

7.अपने शिक्षक/शिक्षिका से चर्चा कीजिए-

(क)जन्तर-मन्तर क्या है और कहाँ स्थित है ?
(ख)वेधशाला किसे कहते हैं ? हमारे देश में कहाँ-कहाँ वेधशालाएँ हैं ?
(ग)आकाशगंगा किसे कहते हैं ?

योग्यता विस्तार -

सम्राट विक्रमादित्य के नवरत्न -कालिदास, धन्वंतरि, वराहमिहिर, अमर सिंह, क्षपणक, शंकू , बेताल भट्ट, घटकर्पर, वररुचि। इनके बारे में पुस्तकालय या अन्य स्रोतों से जानकारी कीजिए।

पाठ - 10

महात्मा बुद्ध

बहुत समय पहले नेपाल की तराई में शुद्धोधन नाम के प्रसिद्ध राजा थे। उनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। उनके पुत्र का नाम सिद्धार्थ था।

सिद्धार्थ सात दिन के ही थे जब उनकी माता महामाया का देहान्त हो गया। उनका लालन-पालन उनकी मौसी महाप्रजापति गौतमी ने किया। सिद्धार्थ को विद्वान द्वारा सभी प्रकार की शिक्षा दी गई। वे तीक्ष्णबुद्धि के थे, जो पढ़ते याद हो जाता। वे क्षत्रिय थे और राजा के पुत्र भी। अतः उन्हें युद्ध के सभी कौशल सिखाए गए। अभ्यास हेतु, उन्हें शिकार के लिए वन भी भेजा जाता था। वे बड़े संवेदनशील थे- शिकार करने के बजाय वे सोचते- कि क्या पशु-पक्षियों को मारना ठीक है? पशु-पक्षी तो बोल भी नही सकते। उनका विचार था, कि 'जिसे मैं जीवन नहीं दे सकता उसका जीवन लेने का मुझे क्या अधिकार है?' वे बिना शिकार किए ही लौट आते।

एक बार उन्होंने एक हिरन की ओर निशाना साधा। सहसा उनकी दृष्टि पास खड़ी उसकी माँ पर पड़ गई। माँ की बड़ी-बड़ी आँखों में तैरते दया याचना के भावों ने उनकी आत्मा को द्रवित कर दिया। वे तीर नहीं चला सके और लौट आए।

बालक सिद्धार्थ जिज्ञासु प्रकृति के थे। उनके व्यवहार में अनोखापन था। विद्वानों ने भविष्यवाणी की थी कि वे एक दिन अपना घर-बार त्याग कर संन्यासी हो जाएंगे। वे संसार को मानवता की शिक्षा देंगे। वे संन्यासी न हो जाएं इसलिए उनके पिता ने यशोधरा नाम की एक सुन्दर कन्या से उनका विवाह कर दिया। सिद्धार्थ ने इसे बन्धन माना। पुत्र राहुल हुआ जिसे उन्होंने बन्ध कसाव समझा। पिता ने बहुत प्रयत्न किया कि गृहस्थ जीवन में उनका मन लगे परन्तु सिद्धार्थ का मन कभी भी परिवार और राजकाज में नहीं लगा।

एक दिन सिद्धार्थ नगर-भ्रमण के लिए जा रहा था। मार्ग में उन्हें एक वृद्ध मिला उसकी आँखें धँसी थीं। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी थीं। वह लाठी के सहारे चल रहा था। मनुष्य की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। पूछने पर उन्हें सारथी ने बताया कि वृद्ध होने पर सब की यही दशा होती है। उन्हें बहुत दुःख हुआ। एक दिन शिकार पर जाते समय उन्होंने देखा कि चार लोग एक मृत व्यक्ति को ले जा रहे हैं, फिर उन्हें बताया गया कि वह व्यक्ति मर गया है। सबको एक दिन मरना है। सिद्धार्थ ने ऐसी घटनाएँ देखीं कि उनका मन न घर में लगता न वन-उपवन में। वे सोचते रहते मनुष्य को इतने कष्ट क्यों भोगने पड़ते हैं? क्या इनसे छुटकारा मिल सकता है?

एक दिन जब महल के सब लोग सो रहे थे, सिद्धार्थ उठे। वे अपनी पत्नी और नन्हे मुन्ने पुत्र की ओर गए। वहाँ उन्होंने कक्ष में रखे दीपक के प्रकाश में नींद में डूबे उन चेहरों को देखा। एक क्षण को मन में कमजोरी आई परन्तु तुरन्त ही वे सँभल गए। वे कक्ष के बाहर आए। उन्होंने सेवक को साथ लिया और शीघ्र ही वे घोड़े पर सवार होकर महल से दूर निकल कर एक स्थान पर रुके। वहाँ राजसी वस्त्र उतारकर उन्होंने सेवक को दिए और सादे कपड़े पहन लिए। उन्होंने घोड़ा लेकर सेवक से वापस जाने को कहा। साथ यह भी कहला दिया कि अब मैं सत्य की खोज करके ही लौटूँगा। इस समाचार से महल में कोहराम मच गया। ऐश्वर्य का जीवन बिताने वाला राजकुमार अब लोगों के दिये हुए दानों पर जीवन बिताने लगा। क्योंकि अब वह सत्य की खोज में लगा था।

संन्यासी की भाँति सिद्धार्थ जगह-जगह घूमते रहे। कुछ दिन बाद वे बोधगया पहुँचे और ज्ञान प्राप्त करने का संकल्प लेकर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गए। छः वर्ष की कठिन साधना के बाद, उन्हें अनुभव हुआ कि उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया है और जीवन की समस्याओं का हल मिल गया है। अब सिद्धार्थ 'बुद्ध' कहलाने लगे।

अब गौतम बुद्ध लोगों को उपदेश देने लगे। वे कहते कि संसार में दुःख ही दुःख है। दुःख का कारण सांसारिक वस्तुओं के लिए इच्छा और कामना है। दुःख से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने ऐसी आठ बातें बतायीं जो मनुष्य को सदाचार की प्रेरणा देती हैं।

गौतम बुद्ध कहते थे कि जीवन में किसी बात की अति न करो। संतुलित जीवन जियो। अहिंसा का पालन करो। किसी को सताओ नहीं। हत्या न करो। पशुओं की बलि देना ठीक नहीं है।

उन्होंने कहा कि भाई-चारे का जीवन अपनाओ। प्रेम का व्यवहार करो। पवित्रता से जीवन बिताओ। सत्य का पालन करो। घृणा को घृणा से नहीं, बल्कि प्रेम से जीतो। प्रेम से घृणा खत्म हो जाती है। दूसरों के दुःख को देखकर प्रसन्न होना अच्छी बात नही है।

गौतम बुद्ध कहते थे कि दूसरों की भलाई करो। परोपकारी से मित्रता करो। दया, स्नेह और करूणा अपनाओ। स्नेहपूर्ण हृदय सबसे बड़ा धन है। दुर्गुण बुरी चीज है। उसे पनपने न दो। अपने दुर्गुण दूर करो।

उन्होंने सागर की तरह गम्भीर बनने की सीख दी। अच्छे विचारों को रत्न बताया और मन को जल के समान रखने को कहा।

उनकी शिक्षा थी कि धैर्य से काम करना चाहिए। सहनशीलता से मन काबू में रहता

हैं। उन्होंने किसी का अपमान करने को मना किया।

उनका कहना था कि स्वास्थ्य से बड़ा कोई लाभ नहीं। संतोष से बड़ा कोई धन नहीं। प्रेम से बड़ी कोई प्राप्ति नहीं है। द्वेष के समान कोई अपराध नहीं। बुद्ध ने कहा कि जाति-पाँति का भेद-भाव ठीक नहीं।

बौद्ध धर्म को मानने वाले सभी वर्गों के लोग थे। भिक्षुओं के रहने के लिए विहार बनवाए गए। स्वाध्याय तथा बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में बौद्ध भिक्षु अपना जीवन व्यतीत करते थे।

थोड़े समय में ही गौतम बुद्ध भारत के अनेक भागों में प्रसिद्ध हो गए। उनकी शिक्षा का प्रभाव भारतीय जीवन के हर पक्ष पर पड़ा। खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, कथा-साहित्य आदि का कोई भी क्षेत्र अछूता न बचा। अजन्ता और एलोरा की गुफाओं की कलापूर्ण मूर्तियों पर, साँची तथा सारनाथ के स्तूप और कुशीनगर की मूर्ति, अशोक चक्र और जातक की कथाएँ सभी इस बात की साक्षी हैं कि बौद्ध धर्म ने जीवन के विविध पक्षों को प्रभावित किया। यही नहीं बौद्ध भिक्षु भारतीय संस्कृति को एशिया के अनेक भागों में ले गए। सम्राट अशोक भी बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को सुदूर देशों में बौद्ध धर्म प्रचार के लिए भेजा था।

गौतम बुद्ध ने अपने प्रेम बन्धन में सभी को बाँध लिया।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.सिद्धार्थ हिरन पर तीर क्यों नहीं चला सके ?
2.वे कौन-सी घटनाएँ थीं जिन्हें देखकर सिद्धार्थ को दुनिया से विरक्ति हो गई ?
3.गौतम बुद्ध ने संसार को कौन-कौन सी शिक्षाएँ दीं ?
4. गौतम बुद्ध ने संसार को कौन-कौन सी शिक्षाएँ दीं ?

5.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क)सिद्धार्थ की पत्नी का नाम .... था।
(ख)सिद्धार्थ ने सेवक से कहला दिया कि अब मैं .... लौटूँगा।
(ग)उन्हें .... की कठिन साधना के बाद ज्ञान प्राप्त हो गया।

अशोक महान

कान में पड़ी आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। नगाड़े बज रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे। हाथी चिंघाड़ रहे थे। तलवारों की झंकार से दिल दहल रहे थे। घायल रो रहे थे। चारो तरफ शोर ही शोर था। कोई किसी को पूछने वाला न था। सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। जिधर देखिये खून ही खून। खोपड़ियाँ लुढ़क रही थीं। कटी गरदनों, भुजाओं और टाँगों की कोई गिनती न थी। चारों ओर बस लाशें ही लाशें थीं। जमीन पर पड़ी और खून में लथपथ लाशें।

अचानक विजय की दुंदुभी बज उठी। सम्राट अशोक की जय-जयकार होने लगी। अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया था, परन्तु कितनी मँहगी पड़ी थी यह जीत। लगभग एक लाख लोग मारे गए और एक लाख पचास हजार बन्दी बनाए गए थे।

अशोक ने युद्ध में मारे गये सिपाहियों को देखा। रोती-बिलखती स्त्रियों और बच्चो को देखा। उनका हृदय द्रवित हो उठा, उसने निर्णय लिया कि अब मैं कभी भी तलवार न उठाऊँगा। उसने लोगों के मन को प्रेम से जीता। यह हृदय द्वारा हृदय की जीत थी। यह विजय स्थायी थी। यह प्रेम और शान्ति की नीति थी। प्रेम के द्वारा उसने इतने बड़े राष्ट्र को एक शासन के सूत्र में बाँध दिया था। इस नीति ने भारत को विश्व में बहुत ऊँचा स्थान दिलाया। इसी कारण अशोक को महान कहा जाता है।

अशोक प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझने लगा। वह दीन-दुखियों, वृद्धो और अपाहिजों का ध्यान रखता और सभी से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता था। वह पशुओ पर दया करता था। राज्य के अधिकारियों को उसके आदेश थे कि प्रजा की सुरक्षा का सदैव ध्यान रखें और अपने कर्त्तव्य का निष्ठा से पालन करें।

अशोक बौद्ध था परन्तु वह सभी धर्मों का आदर करता था। वह सदाचार की शिक्षा देता था। यही उसका धर्म था जिसमें मन की पवित्रता थी, सदाचार था, वाणी की

मृदुता थी, हँसी-खुशी रहने की बात थी, दयालुता का व्यवहार था, क्रोध से दूर रहने की सीख थी, घमण्ड की मनाही थी और ईर्ष्या से बचाव था।

अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। जो बौद्ध धर्म के अनुयायी नहीं थे उनके साथ भी प्रेम का व्यवहार करता था। धर्म प्रचार के लिए उसने, साम्राज्य के सुदूर भागों में प्रचारक भेजे। इसके अतिरिक्त उसने बौद्ध धर्म का प्रचार विदेशों में भी किया। सिंहल द्वीप, चीन और जापान आदि देशों में भी प्रचारक भेजे। उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को भी धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा।

अशोक ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और उपदेशों को शिलाओं, स्तम्भों और गुफाओं में अंकित कराया जिससे वे जनसाधारण तक पहुँच सकें। गौतम बुद्ध के जन्म-स्थान लुम्बिनी वन में भी एक लाट लगवाई। हमारे राष्ट्र ध्वज के मध्य का चक्र सारनाथ के अशोक स्तम्भ से ही लिया गया है।

प्राचीन भारत के शासकों में अशोक का स्थान बहुत ऊँचा है। अशोक महान के कार्य अपनी पीढ़ी और युग से आगे थे। यदि हम उन्हें 'युग पुरुष' कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद युद्ध न करने का निश्चय क्यों किया* ?
2. *अशोक के संदेशों को संक्षेप में लिखिए।*
3. *अशोक ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और उपदेशों को जनमानस तक कैसे पहुँचाया* ?
4. *अशोक को जीत क्यों मँहगी पड़ी* ?
5. *अशोक को युग पुरुष कहना क्यों उचित है* ?

6. ***सही तथ्यों के सामने सही (√) तथा गलत के सामने गलत (x) का निशान लगाएँ।***

(*क*)*अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद कभी युद्ध न करने का निर्णय लिया।*
(*ख*)*अशोक बौद्ध था, परन्तु वह सभी धर्मों का आदर नहीं करता था।*
(*ग*)*अशोक ने सिंहल द्वीप, चीन, जापान आदि देशों में प्रचारक भेजे थे।*
(*घ*) *हमारे राष्ट्र ध्वज के मध्य का चक्र सारनाथ के अशोक स्तंभ से लिया गया है।*

पाठ - 12

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य बचपन से ही स्वाभिमानी थे। अपने पिता के जीवनकाल में ही उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। वह शक राजा द्वारा दिये गये इस अपमान को सह न सके। अपने वंश तथा भाभी के सम्मान के लिए उन्होंने शक राजा की हत्या कर दी।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य धर्मपरायण थे, किन्तु वे धर्मान्ध और असहिष्णु शासक नहीं थे। अन्य धर्मों का भी वह आदर करते थे। उनके शासन में धर्म के आधार पर किसी के साथ कोई भेद-भाव या अत्याचार नहीं किया जाता था। दूसरे धर्मों के प्रति वह उदार एवं सहिष्णु थे। वह बौद्ध मतावलम्बियों को भी भूमि और धन दान देते थे।

महान विजेता होने के साथ-साथ वे सफल कूटनीतिज्ञ थे। वे जानते थे कि सुदूर दक्षिण के राज्यों पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता, इसलिए उन्होंने दक्षिण के राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए जिससे उनके राज्य पर दक्षिण से आक्रमण का भय समाप्त हो गया। इस तरह वे अपनी बुद्धिमानी और राज्यों की सहायता से भारत से विदेशी जातियों को निकालने में सफल रहे।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कला और संस्कृति के प्रति अनुराग रखते थे। उन्होंने विद्वानों को पूरा संरक्षण प्रदान किया। वह स्वयं विद्वानों का आदर करते थे। कहा जाता है कि उनके दरबार में नवरत्न थे। कालिदास उन नवरत्नों में श्रेष्ठ थे। चन्द्रगुप्त का मंत्री वीरसेन स्वयं व्याकरण, न्याय और राजनीति का मर्मज्ञ था। विक्रमादित्य स्वयं कला-प्रेमी और कलाओं के संरक्षक थे। गुप्तकाल में कला के विकास में उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अपनी महान विजयों के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। पश्चिमोत्तर भारत के गण राज्यों को परास्त करने के कारण ही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

को 'गणारि' (गणों का शत्रु) कहा गया है। मालवा की विजय चन्द्रगुप्त के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हुई। इससे उनके साम्राज्य की सीमाएँ समुद्र तट तक फैल गई। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पूर्वी राज्यों तथा बंगाल के विद्रोही राजाओं को भी परास्त किया। इस तरह उनका साम्राज्य पश्चिम मंे पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल तक और उत्तर में कश्मीर की दक्षिण सीमा से लेकर दक्षिण-पश्चिम में काठियावाड़ तथा गुजरात तक फैल गया। उनके शासन में शांति, सुव्यवस्था और समृद्धि थी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए "विक्रमादित्य", "सिंह-विक्रम", "परमाभागवत" और "गणरि" उपाधियों का प्रयोग किया गया है। वे एक पराक्रमी योद्धा और सफल विजेता थे। वे सचमुच गुप्त साम्राज्य के निर्माता थे। दिल्ली के मेहरौली नामक स्थान में स्थित लोहे की लाट आज भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की महान उपलब्धियों की याद दिलाती है।

चीनी यात्री फाह्यान चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में ही भारत आया था। वह छः वर्ष तक भारत में रहा। फाह्यान ने तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उसके विवरण के अनुसार उस समय देश का शासनकाल अत्यन्त सुव्यवस्थित था, लोग शांतिपूर्ण और समृद्धिशाली जीवन बिता रहे थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने धार्मिक औषधालयो और यात्रियों के लिए निःशुल्क विश्रामशालाओं का निर्माण कराया। वे विष्णु के उपासक थे लेकिन उन्होंने बौद्ध और जैन धर्मों को भी प्रश्रय दिया। उस समय भारत के लोग धनी, धर्मात्मा और विद्याप्रेमी थे।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अत्यन्त न्यायप्रिय शासक थे। उनकी न्यायप्रियता की अनेक कहानियाँ आज भी सारे भारत में प्रसिद्ध हैं। जिस विक्रमादित्य की न्यायनीति, उदारता, शौर्य और पराक्रम के बारे में बड़ी संख्या में किंवदंतियाँ प्रचलित हैं, वह शायद हमारे यही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ही थे। ऐसा माना जाता है कि विक्रम संवत् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ही चलाया था।

भारत का सांस्कृतिक विकास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। इसके साथ ही इस युग के साहित्य में देश की समृद्धि के संकेत मिलते हैं।

इस तरह अपने पराक्रम, सुव्यवस्थित शासन, धार्मिक-सहिष्णुता, विद्यानुराग तथा कला प्रेम के द्वारा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने एक महान युग की महान संस्कृति के विकास और समृद्धि में स्मरणीय योग दिया। इसलिए चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है और गुप्त वंश का शासनकाल भारत के इतिहास का स्वर्ण युग कहलाता है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. भारत के इतिहास में विक्रमादित्य का नाम स्वर्णाक्षरों में क्यों अंकित है?
2. चंद्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि कब धारण की?
3. चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में कौन-सा चीनी यात्री भारत आया?
4. चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा

आर्थिक स्थिति कैसी थी?
5 *मेहरौली के लोहे की लाट से किस बात का पता चलता है* ?
6. *गुप्त वंश का शासनकाल भारतीय इतिहास मंे किस युग के नाम से प्रसिद्ध है* ?

पाठ - 13

आल्हा-ऊदल

भारत भूमि का गौरवशाली अतीत रहा है। उत्कट राष्ट्रप्रेम हमारे देश के वीर सपूतों का आभूषण रहा है। मातृभूमि की रक्षा के लिए भारत-वीरों ने आत्म बलिदान को ही अपना मूल मंत्र माना था। हमारे देश की धरती पर समय-समय पर वीरों ने जन्म लिया, जिन्होंने अपनी वीरता, शौर्य, पराक्रम एवं साहस से भारत को ही नहीं वरन् विश्व को भी प्रभावित किया है।

वीरों की परंपरा में बुंदेलखंड क्षेत्र की वीर-भूमि पर दो महान पराक्रमी एवं साहसी वीरों ने जन्म लिया, जिन्हें हम आल्हा और ऊदल के नाम से जानते हैं। वास्तव में इन दोनों महावीरों का चरित्र वीरत्व की मनोरम गाथा है, जिसमें उत्साह और गौरव की मर्यादा का जीवंत रूप दृष्टिगोचर होता है। आल्हा और ऊदल सगे भाई थे। इनके पिता का नाम देशराज सिंह एवं माता का नाम देवल था। देशराज और वत्सराज सहोदर थे। माड़वगढ़ की लड़ाई में माड़वगढ़ के राजा कलिंगराय ने छल का सहारा लिया और रात्रि में धोखे से देशराज और वत्सराज को बंदी बना लिया और उनकी नृशंस हत्या करा दी।

आल्हा और ऊदल के पिता के युद्ध में मारे जाने के बाद महोबा के चंदेल शासक परमाल के महल में उनकी रानी मल्हना द्वारा आल्हा और ऊदल का पालन-पोषण किया गया। रानी मल्हना ने इन दोनों बालकों को अपनी संतान के समान ही प्यार और स्नेह प्रदान करते हुए इनका पालन-पोषण किया। समय के साथ दोनों बालक किशोरावस्था की दहलीज पर आते-आते बरछी, बाण, कृपाण एवं घुड़सवारी की कला में दक्ष हो गए।
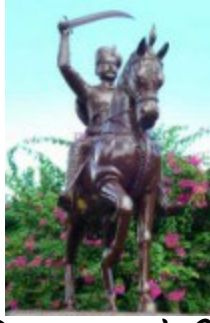
एक दिन ऊदल ने अपने बड़े भाई आल्हा से शिकार पर चलने की जिद की। आल्हा और ऊदल अपने अन्य साथियों के साथ शिकार पर गए। दिन भर जंगल में घूमने के बाद कोई शिकार नहीं मिला। संध्या के समय आल्हा ने ऊदल को महल लौट चलने को कहा किंतु दृढ़ निश्चयी ऊदल ने कहा कि-भैया, बिना लक्ष्य भेद के वापस चलना वीरता का अपमान है। अतः मैं शिकार करके ही लौटूँगा।

आल्हा लौट आए किंतु ऊदल ने अपने घोड़े को आगे बढ़ाया और शिकार की खोज में उरई राज्य की सीमा में प्रविष्ट हो गए। उरई के वन क्षेत्र में ऊदल ने एक हिरन का शिकार किया। उरई राज्य के वनरक्षक के प्रतिरोध करने पर वीर ऊदल ने उसे कोड़े से मारा और कहा कि उस हिरन का शिकार मैंने किया है, मुझे उसे ले जाने से कोई रोक नहीं सकता। वनरक्षक ने ऊदल के इस कृत्य को धृष्टता मानते हुए अपने राजा माहिल परिहार को सूचित किया। राजा माहिल ने शिकारी ऊदल को दंड देने के लिए अपने पुत्र अभय सिंह को भेजा। अभय एवं ऊदल में द्वंद्व युद्ध हुआ। ऊदल ने अभय को पराजित कर दिया। पुत्र की पराजय से खिन्न राजा माहिल आग बबूला हो गए। उन्होंने ऊदल के पालक महोबा के शासक चंदेल राजा परमाल से ऊदल की धृष्टता की शिकायत करते हुए व्यंग्य किया कि यदि आपका चाकर ऊदल इतना बड़ा योद्धा है तो अपने पिता के हत्यारों से बदला क्यों नहीं ले लेता ?

संयोगवश इसी समय ऊदल दरबार में आ गए और पिता की हत्या की बात उनके कानों को वेध्ा गई। आक्रोशित ऊदल ने अपनी माता देवल के पास जाकर पिता की हत्या के विषय में जानकारी चाही। यद्यपि माता ने अपने पुत्र को युद्ध की ज्वाला से बचाने के लिए पिता की बीमारी के विषय में बताया, किंतु ऊदल अभी भी अशांत थे। क्रुद्ध होकर उन्होंने अपनी माता से पुनः पिता के हत्यारे के विषय में जानना चाहा। विवश माँ ने ऊदल को सारा वृत्तांत कह सुनाया। पिता की हत्या का बदला लेने के लिए ऊदल ने अपने चाचा ताला सैयद एवं भाई आल्हा के साथ महोबा की सेना लेकर माड़वगढ़ पर चढ़ाई कर दी। माड़वगढ़ के राजा कलिंगराय को उन्होंने युद्ध में पराजित कर दिया। कलिंगराय के अति विनम्र अनुरोध पर उसे क्षमा करते हुए अपनी अधीनता स्वीकार कराई।

'जगनिक' कृत 'आल्हखण्ड' में इन दोनों वीर भाइयों की 52 लड़ाइयों की गाथा वर्णित है। दोनों भाई एक से बढ़कर एक बहादुर थे। आल्हा धीर-वीर एवं ओजस्वी थे। ऊदल उग्र एवं दृढ़ निश्चयी वीर योद्ध्ा थे। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज के महोबा पर आक्रमण के समय भयानक एवं विध्वंसकारी युद्ध में ऊदल वीरगति को प्राप्त हो गए। अब आल्हा का मन निराशा से भर गया। इस युद्ध के बाद आल्हा का हृदय परिवर्तन हुआ और उन्होंने आदि शक्ति की भक्ति में स्वयं को समर्पित कर दिया।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *आल्हा-ऊदल के पिता देशराज की हत्या किसने की*?

2. *ऊदल और अभय सिंह में द्वंद्व युद्ध क्यों हुआ*?

3. *ऊदल को कैसे पता चला कि उनके पिता की हत्या हुई है*?

4. *माड़वगढ़ की लड़ाई का क्या परिणाम हुआ*?

5. *हृदय परिवर्तन के बाद आल्हा ने क्या किया*?

6. *आल्हा- ऊदल की वीरता को अपने शब्दों में लिखिए*।

पाठ - 14

राजेन्द्र चोल

हमारे भारत का यश और सम्मान बढ़ाने में देश के सभी भागों की विभूतियों ने योगदान दिया है। आप उत्तरी भारत के ऐसे अनेक शासकों के विषय में जानते हैं जिन्होंने देश को शक्तिशाली बनाने और जनता के कल्याण के लिए महŸवपूर्ण कार्य किया। दक्षिण भारत में भी ऐसे महान शासक हुए हैं, जिनमंे राजेन्द्र चोल का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

राजराज प्रथम चोलवंश का शासक था। राजेन्द्र चोल इन्हीं के पुत्र थे। 1014 ई0 में पिता की मृत्यु के बाद राजेन्द्र चोल ने राज्य का शासन सँभाला और 1044 ई0 तक शासन किया। इस अवधि में उन्होंने राज्य की शक्ति बढ़ाने, सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करने और जनता को सुख-सुविधा प्रदान करने के लिए कई महŸवपूर्ण कार्य किये।

चोल राज्य दक्षिणी भारत के प्रायद्वीप में स्थित था। यह भाग तीन ओर से समुद्र से घिरा है। राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने और आक्रमणों से उसकी रक्षा करने के लिये शक्तिशाली सेना का संगठन आवश्यक होता है। राजेन्द्र चोल इस बात को भली-भाँति समझते थे। उनके पिता राजराज प्रथम ने शक्तिशाली सेना का संगठन किया था। इस सेना की सहायता से उन्होंने पाण्ड्य और चेर जैसे पड़ोसी राज्यों और मैसूर तथा आन्ध्र के भागों पर आक्रमण कर वहाँ अपना प्रभाव बढ़ाया था। उन्होंने शक्तिशाली जल सेना का भी संगठन किया था और लंका तथा मालद्वीप पर आक्रमण कर वहाँ अपना अधिकार स्थापित किया था। राजेन्द्र चोल ने अपने पिता की विजय नीति को जारी रखा।

सैनिक शक्ति बढ़ाकर राजेन्द्र चोल ने विजय अभियान को आगे बढ़ाया। इसके

लिये उन्हें अनेक युद्ध लड़ने पड़े। इनमें दो युद्ध बहुत ही साहसिक और वीरतापूर्ण थे। इस युद्ध मंे उनकी सेना समुद्र तट से होकर उड़ीसा की ओर बढ़ती गयी। उड़ीसा को पार कर गंगा तक पहुँच गयीं और उन्होंने बंगाल के शासक पर विजय प्राप्त की। गंगा के क्षेत्र तक प्राप्त विजय की स्मृति में राजेन्द्र चोल ने 'गंगईकोण्ड' उपाधि धारण की तथा गंगईकोण्ड चोल पुरम् नामक नयी राजधानी का निर्माण कराया। उत्तरी भारत मंे राजेन्द्र चोल की यह विजय वैसी ही थी जैसी उत्तरी भारत के प्रसिद्ध सम्राट समुद्रगुप्त की थी जिन्होंने दक्षिणी भारत मंे अपना प्रभाव बढ़ाया था।

राजेन्द्र चोल के दूसरे विजय अभियान से भारत का प्रभाव समुद्र पार देशों पर स्थापित हुआ। वह बहुत दूरदर्शी शासक था। उनके समय में भारत का पश्चिमी और पूर्वी एशिया के देशों से व्यापार बहुत बढ़ गया था। भारत से पश्चिमी एशिया को वस्त्र, मसाले, बहुमूल्य रत्न आदि अनेक वस्तुएँ भेजी जाती थीं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न भागों से भारतीय व्यापारी लम्बे समय से व्यापार करते आ रहे थे। यह व्यापार दक्षिण चीन तक फैल गया था।

जहाजों द्वारा भारत की वस्तुएँ चीन भेजी जाती थीं। चीन तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अन्य देशों से जहाजों द्वारा सामग्री भारत आती थी। भारतीय जहाजों को मलक्का की जलसन्धि (जलडमरूमध्य) से होकर गुजरना पड़ता था। उस समय इस पर श्री विजय का अधिकार था। मलाया प्रायद्वीप और सुमात्रा द्वीप इसी राज्य में सम्मिलित थे। श्री विजय के व्यापारी भारतीय जहाजों के मार्ग में कठिनाइयाँ उत्पन्न करने लगे। भारतीय व्यापारियों ने अपनी सुरक्षा के लिए राजेन्द्र चोल से प्रार्थना की। उन्होंने विशाल सेना भेजी जिसने श्री विजय पर विजय प्राप्त की। अब भारतीय व्यापारी उस मार्ग से सुरक्षापूर्वक व्यापार करने लगे। विदेश के साथ व्यापार के प्रसार से भारत को बहुत लाभ हुआ। चोल साम्राज्य की आय मंे भी बहुत वृद्धि हुई।

दक्षिण भारत में चोल राज्य का विस्तार करने के साथ ही राजेन्द्र चोल ने उड़ीसा तथा महाकोशल से बंगाल तक अपना अधिकार स्थापित किया। इसके अतिरिक्त उसने श्रीलंका, निकोबारद्वीप, ब्रह्मा, मलाया प्रायद्वीप, सुमात्रा आदि को अपने अधीन किया।

वह महान साम्राज्य निर्माता तो था ही इसके साथ ही वह कुशल शासक भी था। उन्होंने राज्य की शासन-व्यवस्था का उत्तम प्रबन्ध किया। वह मन्त्रिपरिषद के अधिकारियों की सहायता से विशाल चोल साम्राज्य पर शासन करता था। सुविधा के लिए शासन को कई विभागों में संगठित किया गया था और प्रत्येक विभाग में कई स्तर के अधिकारी होते थे।

साम्राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था और ये प्रान्त मण्डलम कहलाते थे। प्रत्येक मण्डलम कई वालानाडुओं मंे बाँटा गया था। प्रत्येक वालानाडु में निश्चित संख्या में गाँव होते थे। चोल शासन प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि स्थानीय प्रशासन की इकाई के रूप में गाँव का संगठन किया गया था। ग्राम सभा स्वायत्तशासी संस्थाएँ थीं जो गाँव के शासन के विभिन्न अंगांे के कार्य की देख-रेख करती थीं। ग्यारहवीं शताब्दी मंे ग्राम पंचायत की कार्यकुशलता का उदाहरण आज भी ग्राम सभाओं के लिए आदर्श है।

राजेन्द्र चोल ने कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया। भूमि का सावधानी से

सर्वेक्षण करा उसे दो भागों में बाँटा गया। एक भाग कर योग्य था दूसरा कर के लिए अयोग्य था। उर्वरता तथा पैदा की जाने वाली फसलों के आधार पर कर निर्धारण किया गया। तालाबों से सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ाई गई। इससे कृषि का उत्पादन बढ़ा और किसानों की दशा में सुधार हुआ।

व्यापार के विकास की ओर भी राजेन्द्र चोल ने बहुत ध्यान दिया। उसके समय में व्यापारी बहुत सम्पन्न हो गए थे। वे विशाल भारत के अनेक राज्यों से तो व्यापार करते थे, चीन, दक्षिण-पूर्वी एशिया और पश्चिमी एशिया के साथ भी उनका व्यापार बढ़ गया था। कुछ व्यापारी मिलकर एक व्यापार मण्डल बना लेते थे जिसे मणिग्राम कहा जाता था। व्यापार मण्डल प्रायः एक ही व्यवसाय में लगे व्यक्तियों का संगठन होता था। सभी व्यापारियों का धन मिलाकर बैंक- सा बन जाता था। इससे व्यापार के विकास में बहुत सहायता मिली। हर व्यापार मण्डल के पास अपना एक काफिला होता था जो सामान एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का कार्य करता था। इनके पास कुछ सशक्त सैनिक भी होते थे जो काफिले की रक्षा के लिए साथ चलते थे।

राजेन्द्र चोल की सुन्दर शासन व्यवस्था के कारण समाज में शान्ति स्थापित रही। समाज का जीवन सुखी तथा सुविधापूर्ण था। प्राचीन काल के एक शासक द्वारा राज्य की रक्षा और शासन की ऐसी सुन्दर व्यवस्था आश्चर्यजनक है। राजेन्द्र चोल के कार्यों से पता चलता है कि वह बहुत दूरदर्शी तथा कुशल शासक था। उसने देश की भौगोलिक स्थिति का ध्यान रखते हुए रक्षा सेनाओं का संगठन किया। शक्तिशाली जल सेना की सहायता से ही वह समुद्र पार देशों में भारत का प्रभाव तथा व्यापार बढ़ाने में सफल हो सका।

हमारे देश में शक्तिशाली जल सेना के अभाव के कारण यूरोप के लोग यहाँ अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुए। इसी के फलस्वरूप भारत को अंग्रेजों की पराधीनता में रहना पड़ा। राजेन्द्र चौल की शासन प्रणाली तथा समाज-कल्याण के लिए किए गए कार्य आज भी हमारे लिये प्रेरणा के स्रोत हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *राजेंद्र चोल ने कृषि की उन्नति के लिए क्या किया* ?
2. *राजेंद्र चोल एक कुशल शासक थे, स्पष्ट कीजिए* ?
3. *सुरक्षा के क्षेत्र में राजेंद्र चोल के किस कार्य से उनकी दूरदर्शिता का पता चलता है* ?
4. *राजेंद्र चोल के समय में गाँवों की व्यवस्था कैसी थी* ?
5. *नीचे दिए गए कथनों में सही कथन पर √ का चिह्न लगाइए-*

(*क*) *राजेंद्र चोल राजराज चोल का पुत्र था।* ( )

(*ख*) *बंगाल के शासक ने राजेंद्र चोल की सेना को युद्ध में पराजित किया।* ( )

(*ग*) *गंगा तक के क्षेत्र को जीतने के बाद राजेंद्र चोल ने "गंगईकांेड" की उपाधि*

धारण की। ( )

(घ) राजेंद्र चोल के समय में भारत का विदेशों के साथ व्यापार घट गया। ( )

रोचक कार्य

1.एशिया के मानचित्र में ब्रह्मा, महाकोशल, मलाया, श्रीलंका, सुमात्रा की स्थिति देखिए।

2.चोल कला के मंदिरों के चित्रों का एलबम तैयार करिए।

पाठ - 15

महाराजा सुहेलदेव

बच्चों! आप लोगों ने बहराइच जनपद का नाम सुना होगा। धार्मिक क्षेत्र में बहराइच का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महर्षि अष्टावक्र, भगवान बुद्ध आदि की यह तपस्थली रही है। अहिंसा के अवतार भगवान बुद्ध यहीं जेतवन में कई वर्षों तक वर्षा ऋतु के चौमासे व्यतीत करने आते थे। हिंसा का प्रतीक, जनता को अपने लूट-मार और आतंक से भयभीत करने वाला कुख्यात डाकू अंगुलिमाल, यहीं जालिनी वन में रहता था। भगवान बुद्ध ने यहीं उसे अहिंसा धर्म में दीक्षित किया था।

भारत-नेपाल सीमा के निकट बहराइच जनपद में बाबागंज रेलवे स्टेशन से तीन किमी0 की दूरी पर चरदा के प्रसिद्ध किले का
ध्वंसावशेष उस ओर आने वाले यात्रियों के मस्तिष्क में अपनी मूक भाषा की एक करुण स्मृति भर देता है। वर्षों पूर्व यहाँ एक राजा का शासन था। उनका नाम सुहेलदेव था। उन्हें सुहिरिध्वज भी कहा जाता है जो कि मोरध्वज, मकरध्वज आदि क्षत्रिय राजाओं के नाम से मिलता जुलता है। ;द्ध "अलग-अलग इतिहासकार राजा सुहेलदेव को भर, थारु अथवा राजपूत जाति का मानते थे।" चरदा की डीह राजा सुहेलदेव का किला माना जाता है।
गजनी के सुल्तान महमूद गजनवी का नवासा सैयद सालार मसूद गाजी ने पंजाब से बहराइच तक जब अपनी विजय पताका फहरायी उस समय बहराइच के इसी नरेश महाराजा सुहेलदेव ने छोटे-छोटे पहाड़ी राजाओं की संयुक्त सेना गठित कर उन्हें पराजित किया। अपने प्रजाजनों की रक्षा की और वहाँ के लोगों की लाज बचाई।
बहराइच से साढ़े सात किमी0 पूर्व रेलवे स्टेशन बहराइच के निकट चित्तौरा झील है। इसी के किनारे, जहाँ से टेढ़ी नदी 'कुटिला' निकली है, राजा सुहेलदेव से सैयद

सालार मसूद गाजी घमासान युद्ध में पराजित होकर शहीद हो गए। सैयद सालार मसूद गाजी को पराजित करने के कारण इनका नाम पूरे भारत में फैल गया था। इन्होंने केवल सैयद सालार को ही पराजित नहीं किया वरन् बाद में भी वे विदेशी आक्रमणकारियों से निरन्तर लोहा लेते रहे।

राजा सुहेलदेव स्मारक समिति की ओर से महाराजा सुहेलदेव की स्मृति में चित्तौरा झील के किनारे स्थित उक्त ऐतिहासिक स्थल जहाँ पर उन्होंने सैयद सालार मसूद गाजी को परास्त कर शहीद किया था, एक मन्दिर का निर्माण कराया गया है और उनकी मूर्ति स्थापित की गई है। उनकी स्मृति में इस स्थान का नाम सुहेलनगर रखा गया है। प्रतिवर्ष बसंत पंचमी को यहाँ मेला लगता है।

इस जिले के स्थानीय रीति-रिवाजों में सुहेलदेव का स्मरण बड़े आदरपूर्वक किया जाता है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. महाराजा सुहेलदेव कहाँ के राजा थे और वे क्यों प्रसिद्ध हैं?
2. बहराइच जनपद किन-किन विभूतियों की तपस्थली रही है?
3. भगवान बुद्ध 24 वर्षों तक वर्षा ऋतु में चौमासे व्यतीत करने किस स्थान पर आते थे?

4. नीचे कथनों पर सही (√) या गलत (x) का चिह्न लगाइए-

(क) महाराजा सुहेलदेव को मकरिध्वज नाम से भी जाना जाता है।
(ख) चरदा की डीह राजा सुहेलदेव का किला माना जाता है।
(ग) सुहेलनगर में प्रतिवर्ष बसंत पंचमी को मेला लगता है।
(घ) सैयद सालार मसूद गाजी टेढ़ी नदी के किनारे युद्ध में विजयी हुआ।

योग्यता विस्तार:-

अपने जनपद की उन महान विभूतियों के बारे में पता कीजिए जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में भारत का नाम रोशन किया है।

सूफी संत: निज़ामुद्दीन और अमीर खुसरो

भारत में सामाजिक समरसता और मेल-जोल स्थापित करने में सूफी संत शेख निज़ामुद्दीन औलिया और उनके शिष्य अमीर खुसरो का विशेष योगदान रहा है। शेख निज़ामुद्दीन ने मानव-प्रेम तथा सद्भावना का संदेश देकर भारतीय जीवन दर्शन को प्रभावित किया। अमीर खुसरो हिन्दू-मुस्लिम समाज और संस्कृति के वाहक बने और उन्होंने सांस्कृतिक समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया।

शेख निज़ामुद्दीन औलिया

शेख निज़ामुद्दीन औलिया का जन्म 1236 ई0 में बदायूँ में हुआ था। केवल पाँच वर्ष की उम्र में ही उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता की मृत्यु के उपरान्त उनके पालन-पोषण और शिक्षा का भार माता जुलेखा के कन्धों पर आ गया। माता के प्रभाव से बालक निज़ामुद्दीन में आध्यात्मिक विचारों का उदय हुआ। बदायूँ में आरम्भिक शिक्षा पाने के बाद वे अपनी माँ के साथ दिल्ली चले गए। वहाँ रहकर निज़ामुद्दीन ने आगे की शिक्षा ग्रहण की और शीघ्र ही प्रसिद्ध विद्वान बन गए।

उन दिनों सूफी संत हजरत ख्वाजा फरीदुद्दीन की बड़ी ख्याति थी। वे अजोधन (अब पाकिस्तान) में रहते थे। उनकी प्रसिद्धि सुनकर निज़ामुद्दीन भी उनके दर्शन के लिए अजोधन गए। बाबा फरीद ने अति प्रसन्नता एवं प्रेम से शेख निज़ामुद्दीन को अपना शिष्य बना लिया। बाबा फरीद के सानिध्य में रहकर शेख निज़ामुद्दीन ने उनसे आध्यात्मिक चिंतन एवं साधना के रहस्यों की जानकारी प्राप्त की। कुछ समय बाद वे पुनः दिल्ली लौट आए।
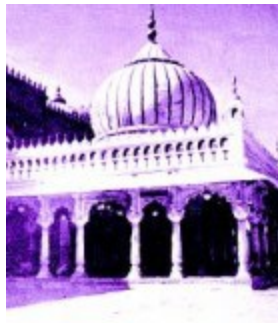
निज़ामुद्दीन औलिया की

दिल्ली स्थित दरगाह

दिल्ली लौटने पर शेख निज़ामुद्दीन ने गयासपुर नामक स्थान पर एक मठ की स्थापना की। यह स्थान नई दिल्ली में है, जो आज हजरत निज़ामुद्दीन के नाम से जाना जाता है। गयासपुर का मठ शेख साहब के जीवन काल में ही दिल्ली के लोगों के लिए सबसे बड़ा धार्मिक श्रद्धा का तीर्थस्थल बन गया था।

1265 ***में बाबा फरीद के निधन के पश्चात् शेख निज़ामुद्दीन औलिया उनके उत्तराधिकारी घोषित कर दिए गए। अब शेख का नाम दिल्ली एवं आस-पास के क्षेत्रों में भी प्रसिद्ध हो गया। लोग दूर-दराज से उनके दर्शन के लिए आने लगे। शेख को स्वयं कविता में बड़ी रुचि थी। उनकी खानकाह (मठ) में अच्छे कव्वाल आते रहते थे। उनके कव्वाली समारोहों में भी बड़ी संख्या में भीड़ जुटती थी।***

शेख निज़ामुद्दीन के हृदय में गरीबों के प्रति अत्यधिक करुणा थी। उनको उपहार और भेंट में जो कुछ चीजें मिलती थीं, उसे वे खानकाह में अपने श्रद्धालुओं में बाँट दिया करते थे। उनका लंगर (भंडारा) सभी के लिए खुला रहता था।

शेख साहब ने जीवन भर मानव-प्रेम का प्रचार किया। उन्होंने लोगों को सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने की शिक्षा दी। उनकी शिष्य मंडली में सभी वर्गों एवं क्षेत्रों के लोग शामिल थे। वे अपने शिष्यों का ध्यान सदैव सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर आकृष्ट कराते रहे। 1325 ***ई0 में शेख निज़ामुद्दीन औलिया के निधन से पूरा जनमानस शोक संतप्त हो गया। अमीर खुसरो के शब्दों में-***

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।

भले ही वे आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन मानवता के प्रति प्रेम और सेवा भावना जैसे गुणों के कारण शेख निज़ामुद्दीन औलिया को महबूब-ए-इलाही (प्रभु के प्रिय) का दर्जा मिला। आज भी वे लोगों में सुल्तान-उल-औलिया (संत सम्राट) के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी पवित्र मजार पर प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग आते हैं और मन्नत माँगते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

अमीर खुसरो:

"वह आये तो शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।

क्यों सखि साजन ?

नहिं सखि, 'ढोल' !"

अमीर खुसरो की मुकरियाँ और पहेलियाँ भारतीय जनमानस में रची-बसी हैं। हिन्दी कृतियों के कारण ही उनको जनसाधारण में विशेष लोकप्रियता प्राप्त है। खुसरो की हिन्दी रचनाओं में गीत, दोहे, पहेलियाँ और मुकरियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

शेख निज़ामुद्दीन औलिया के अनन्य भक्त एवं शिष्य अमीर खुसरो का जन्म 1253 *ई*0 *में एटा जिले के पटियाली कस्बे में हुआ। इनके पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन महमूद था। पिता प्रकृति, कला और काव्य के प्रेमी थे, जिसका असर अमीर खुसरो पर बचपन से ही पड़ा। युवा होने पर खुसरो ने एक दरबारी का जीवन चुना। सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी और सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने खुसरो को अपने दरबार में कवि, साहित्यकार और संगीतज्ञ के रूप में सम्मान दिया। राज-दरबार एवं अन्य कलाकारों के सानिध्य में खुसरो की प्रतिभा दिन-ब-दिन निखरती गई। अमीर खुसरो फारसी और हिन्दी दोनों भाषाओं के विद्वान थे, अरबी और संस्कृत का भी उन्हें अच्छा खासा ज्ञान था। उन्होंने अपनी रचनाओं में भारत की जलवायु, फल-फूल और पशु-पक्षियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। खुसरो ने दिल्ली को बगदाद से भी बढ़कर माना है। भारतीय दर्शन को उन्होंने यूनान और रोम से श्रेष्ठ बताया है। उनके अनुसार-''इस देश के कोने-कोने में शिक्षा और ज्ञान बिखरे पड़े हैं।'' उन्होंने अपनी रचनाओं में भारत की सराहना भी की है। उन्हें भारतीय होने का बहुत गर्व था। अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'गुर्रतुल कलाम' में लिखा है-''मैं एक हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ। आपके प्रश्नों का उत्तर हिन्दी में दे सकता हूँ.......। मैं ''तूतिए-हिन्द'' (हिन्दुस्तान का तोता) हूँ। आप मुझसे हिंदी में प्रश्न करें, ताकि मैं आपसे भलीभाँति बात कर सकूँ।''*

अमीर खुसरो उच्चकोटि के संगीतज्ञ भी थे। वह प्रथम भारतीय थे जिन्होंने ईरानी और भारतीय रागों के सम्मिश्रण की बात सोची। उन्होंने कई रागों की रचना भी की। इन रागों ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व किया। गायन में नयी पद्धति 'ख्याल' अमीर खुसरो की देन है। उन्होंने भारतीय 'वीणा' और ईरानी 'तम्बूरा' के संयोग से 'सितार' का आविष्कार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'मृदंग' को सुधार कर 'तबले' का रूप दिया। शेख निज़ामुद्दीन औलिया का शिष्य होने के कारण खुसरो पर सूफी संतों की मान्यताओं का विशेष प्रभाव था। भारत के साथ ही विदेशों के फारसी कवियों में भी उनको उपयुक्त स्थान मिला। उन्होंने ख्वाजा हजरत अमीर खुसरो के नाम से ख्याति प्राप्त की। 1325 *ई*0 *में शेख निज़ामुद्दीन औलिया के निधन के बाद अमीर खुसरो विरक्त होकर रहने लगे और उसी वर्ष उनका भी देहावसान हो गया।*

खुसरो एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी। लोगों से मेल-जोल रखने के कारण वे जनसामान्य में अत्यधिक लोकप्रिय थे। समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग उन्हें अपने बीच पाकर खुश हो उठते थे। भारतीय इतिहास में उनका व्यक्तित्व समकालीन लोगों के मध्य अतुलनीय एवं अद्वितीय था।

पारिभाषिक शब्दावली

मुकरियाँः पहेलियों का एक प्रकार है जिसका उत्तर उसकी अखिरी पंक्ति में निहित होता है।

ख्यालः शास्त्रीय गायन का एक प्रकार है।

तम्बूराः एक प्रकार का वाद्य यंत्र है। इसमें चार तार लगे होते हैं।

अभ्यास

1.शेख निज़ामुद्दीन औलिया अजोधन क्यों गए?

2.बाबा फरीद के निधन के बाद शेख निज़ामुद्दीन औलिया को उनका उत्तराधिकारी क्यों घोषित किया गया?

3.शेख निज़ामुद्दीन अपने शिष्यों का ध्यान किस ओर और क्यों आकृष्ट कराते रहे?

4.अमीर खुसरो को किन-किन भाषाओं का ज्ञान था?

5.अमीर खुसरो ने संगीत के क्षेत्र में क्या योगदान किया है?

6.अमीर खुसरो जनसाधारण में क्यों प्रसिद्ध थे?

7.सही वाक्य पर सही (√) और गलत वाक्य पर गलत (x) का चि० लगाइए-

(क)अमीर खुसरो ने हिन्दू-मुस्लिम समाज और संस्कृति के बीच समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया।

(ख)अमीर खुसरो ने गयासपुर नामक स्थान पर एक मठ की स्थापना की।

(ग) शेख निज़ामुद्दीन औलिया को बाबा फरीद के निधन के बाद उनका उत्तराधिकारी घोषित किया गया।

(घ)बदायूँ मंें शिक्षा प्राप्त करने के बाद अमीर खुसरो दिल्ली चले गए।

(ङ)शेख निज़ामुद्दीन ने अपनी कविताओं में भारत की सराहना की है।

(च)अमीर खुसरो ने वीणा और तम्बूरा के संयोग से सितार का आविष्कार किया।

8.भाव स्पष्ट कीजिए-

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।

9.अपने शिक्षक/शिक्षिका से पता कीजिए-

(क) हजरत निज़ामुद्दीन कहाॅ हैं और क्यों प्रसिद्ध हैं ?

(ख)शेख निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह कहाँ स्थित है ?

(ग) पहेलियों और मुकरियों में क्या अंतर होता है ?

10.स्वयं कीजिए-

(क)अमीर खुसरो की पहेलियाँ आज भी जनमानस में बोली-सुनी जाती हैं। अपने दादी-नानी से चर्चा कीजिए और पहेलियों का संग्रह कीजिए।

(ख)मानचित्र में खोजिए-

बदायूँ, हजरत निज़ामुद्दीन स्टेशन, नई दिल्ली, एटा।

योग्यता विस्तारः-

पता करके लिखिए कि अमीर खुसरो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के सबसे प्रिय शिष्य कैसे बने ?

अमीर खुसरो को अपने भारतीय होने पर क्यों गर्व था?

पाठ - 17

कबीर और उनके गुरु रामानन्द

कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय,
कह कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय।
-कबीर
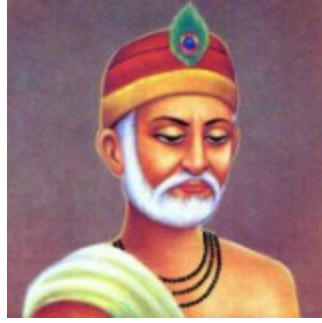
हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, धनी, निर्धन सबका वही एक प्रभु है। सभी की बनावट में एक जैसी हवा, खून, पानी का प्रयोग हुआ है। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, नींद सभी की जरूरतें एक जैसी हैं। सूरज, प्रकाष और गर्मी सभी को देता है, वर्षा का पानी सभी के लिए है, हवा सभी के लिए है। सभी एक ही आसमान के नीचे रहते हैं। इस तरह जब सभी को बनाने वाला ईष्वर, किसी के साथ भेद-भाव नहीं करता तो फिर मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, छुआ-छूत का भेद-भाव क्यों है? ऐसे ही कुछ प्रष्न कबीर के मन में उठते थे जिनके आधार पर उन्होंने मानव मात्र को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। कबीर ने अपने उपदेषांे के द्वारा समाज में फैली बुराइयों का कड़ा विरोध किया और आदर्ष समाज की स्थापना पर बल दिया।

माना जाता है कि उनका जन्म 1398 ई0 में काषी में हुआ था। कबीर का पालन-पोषण नीरू और नीमा नामक दम्पत्ति ने किया था। इनका विवाह लोई नाम की कन्या से हुआ जिससे एक पुत्र कमाल तथा पुत्री कमाली का जन्म हुआ। कबीर ने अपने पैतष्क व्यवसाय (कपड़ा बुनने का काम) में हाथ बँटाना शुरू किया। धार्मिक प्रवष्त्तियों के कारण कबीर रामानन्द के षिष्य बन गए।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे इसलिए उनका ज्ञान पुस्तकीय या शास्त्रीय नहीं था। अपने जीवन में उन्होंने जो अनुभव किया, जो साधना से पाया, वही उनका अपना ज्ञान था।

जो भी ज्ञानी, विद्वान उनके सम्पर्क में आते उनसे वे कहा करते थे-

'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखों की देखी।

सैकड़ों पोथियाँ (पुस्तकें) पढ़ने के बजाय वे प्रेम का ढाई अक्षर पढ़कर स्वयं को धन्य समझते थे।

कबीर को बाह्य आडम्बर, दिखावा और पाखण्ड से चिढ़ थी। मौलवियों और पण्डितो के कर्मकाण्ड उनको पसन्द नहीं थे। मस्जिदों में नमाज़ पढ़ना, मंदिरों में माला जपना, तिलक लगाना, मूर्तिपूजा करना, रोजा या उपवास रखना आदि को कबीर आडम्बर समझते थे। कबीर सादगी से रहना, सादा भोजन करना, पसन्द करते थे। बनावट उन्हें अच्छी नहीं लगती थी। अपने आस-पास के समाज को वे आडम्बरों से मुक्त बनाना चाहते थे।

साधु-संतों के साथ कबीर इधर-उधर घूमने जाते रहते थे। इसलिए उनकी भाषा में अनेक स्थानों की बोलियों के शब्द आ गए हैं। कबीर अपने विचारों और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग करते थे। कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भी कहा जाता है।

कबीर अपनी स्थानीय भाषा में लोगों को समझाते, उपदेष देते थे । जगह-जगह पर उदाहरण देकर अपनी बातों को लोगों के अन्तर्मन तक पहुँचाने का प्रयास करते थे। कबीर की वाणी को साखी, सबद और रमैनी तीन रूपों में लिखा गया जो 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर ग्रंथावली में भी उनकी रचनाएँ संग्रहीत हैं।

कबीर की दृष्टि में गुरु का स्थान भगवान से भी बढ़कर है। एक स्थान पर उन्होंने गुरु को कुम्हार बताया है, जो मिट्टी के बर्तन के समान अपने षिष्य को ठोंक-पीटकर सुघड़ पात्र में बदल देता है।

सज्जनों, साधु-संतों की संगति उन्हें अच्छी लगती थी। यद्यपि कबीर की निन्दा करने वाले लोगों की संख्या कम नहीं थी लेकिन कबीर निन्दा करने वाले लोगों को अपना हितैषी समझते थे-

'निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।

बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।

उस समय लोगों के बीच में ऐसी धारणा फैली हुई थी कि मगहर में मरने से नरक मिलता है। इसलिए कबीर अपनी मृत्यु निकट जानकर काषी से मगहर चले गये और समाज में फैली हुई इस धारणा को तोड़ा। 1518 ई0 *में उनका निधन हो गया।*

कबीर सत्य बोलने वाले निर्भीक व्यक्ति थे। वे कटु सत्य भी कहने में नहीं हिचकते थे। उनकी वाणी आज के भेद-भाव भरे समाज में मानवीय एकता का रास्ता दिखाने में सक्षम है।

संत रामानन्द

रामानन्द का जन्म 1299 ई0 *में प्रयाग में हुआ था। इनकी माता का नाम सुषीला और पिता का नाम पुण्य दमन था। इनके माता-पिता धार्मिक विचारों और संस्कारों के थे। इसलिए रामानन्द के विचारों पर भी माता-पिता के संस्कारों का प्रभाव पड़ा। बचपन से ही वे पूजा-पाठ में रुचि लेने लगे थे। रामानन्द कबीर के गुरु थे।*

रामानन्द की प्रारम्भिक षिक्षा प्रयाग में हुई। रामानन्द प्रखर बुद्धि के बालक थे। अतः धर्मषास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हें काषी भेजा गया। वहीं दक्षिण भारत से आये गुरु राघवानन्द से उनकी भेंट हुई।

राघवानन्द वैष्णव सम्प्रदाय में विष्वास रखते थे। उस समय वैष्णव सम्प्रदाय में अनेक रूढ़ियाँ थीं। लोगों में जाति-पाँति का भेद-भाव था। पूजा-उपासना में कर्मकाण्ड का जोर हो चला था। रामानन्द को यह सब अच्छा नहीं लगता था।

गुरु से षिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके रामानन्द देष भ्रमण को निकल गए और उन्होंने समाज में फैली जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि की विषमता को जाना और उसे तोड़ने का मन बना लिया। देष-भ्रमण के बाद जब रामानन्द आश्रम में वापस आये तो गुरु राघवानन्द ने उनसे कहा कि ''तुमने दूसरी जाति के लोगों के साथ भोजन किया है। इसलिए तुम हमारे आश्रम में नहीं रह सकते।'' रामानन्द को गुरु के इस व्यवहार से आघात पहुँचा और उन्होंने अपने गुरु का आश्रम त्याग दिया।

रामानन्द के मन में समाज में फैली, ऊँच-नीच, छुआ-छूत, जाति-पाँति की भावना को दूर करने का दृष्ढ़ संकल्प था। उनका विचार था कि यदि समाज में इस तरह की भावनाएँ रहीं तो सामाजिक विकास नहीं हो सकता। उन्होंने एक नये मार्ग और नये दर्षन की शुरुआत की, जिसे भक्ति मार्ग की संज्ञा दी गई। उन्होंने इस मार्ग को अधिक उदार और समतामूलक बनाया, और भक्ति के द्वार धनी, निर्धन, नारी-पुरुष, अछूत-ब्राह्मण सबके लिए खोल दिए। धीरे-धीरे भक्ति मार्ग का प्रचार-प्रसार इतना बढ़ गया कि डाॅ0 ग्रियर्सन ने इसे बौद्ध-धर्म के आन्दोलन से बढ़कर बताया। रामानन्द के बारह प्रमुख षिष्य थे। जिनमें अनन्तानन्द, कबीर, पीपा, भावानन्द, रविदास, नरहरि, पद्मावती, धन्ना, सुरसुर आदि शामिल हैं।

रामानन्द संस्कृत के विद्वान थे और संस्कृत में उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की किन्तु उन्होंने अपने उपदेष व विचारों को जनभाषा हिन्दी में प्रचारित-प्रसारित कराया। उनका मानना था कि हिन्दी ही एक मात्र ऐसी भाषा है जिसके माध्यम से सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

रामानन्द के विचार एवं उपदेषों ने दो धार्मिक मतों को जन्म दिया। पहला रूढ़िवादी दूसरा प्रगतिवादी। रूढ़िवादी विचारधारा के लोगों ने प्राचीन परम्पराओं व विचारों में विष्वास करके अपने सिद्धान्तों व संस्कारों में परिवर्तन नहीं किया। प्रगतिवादी विचारधारा वाले लोगों ने स्वतंत्र रूप से ऐसे सिद्धान्त अपनाये जो सभी को मान्य थे। इस परिवर्तन से समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार मिलने लगा।

रामानन्द महान संत थे, उनकी वाणी में जादू था। भक्ति में सराबोर रामानन्द ने ईष्वर भक्ति को सभी दुःखों का निदान एवं सुखमय जीवन-यापन का सबसे अच्छा मार्ग बताया है। लगभग 112 वर्ष की आयु में 1412 ई0 में रामानन्द का निधन हो गया। संत रामानन्द 'राम' के अनन्य भक्त और भक्ति आन्दोलन के 'जनक' के रूप में सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रष्नों के उत्तर लिखिए-

1. कबीर वाह्य आडम्बर किसे कहते थे ?

2. कबीर ने अपने उपदेषों में किन बातों पर बल दिया ?

3.सही कथन के सामने सही (√) तथा गलत कथन के सामने गलत (x) का निषान लगाइए।

1. कबीर की षिक्षा-दीक्षा काषी में हुई।
2. निन्दा करने वाले लोगों को कबीर अपना हितैषी समझते थे ।
3. कबीर की वाणी को साखी, सबद, रमैनी तीन रूपों में लिखा गया है।
4. रामानन्द ने संस्कृत में अनेक ग्रन्थों की रचना की।

4.सही विकल्प चुनकर लिखिए-

कबीर की दृष्टि में गुरु का स्थान -
क. माता-पिता के समान है।
ख. भगवान के समान है।
ग. भगवान से बढ़कर है।

योग्यता विस्तार

गुरु की महिमा तथा बाह्य आडम्बर के विषय में कहे गए कबीर के दोहों में से एक-एक दोहे को याद कीजिए।

पाठ - 18

सन्त रविदास

कोई भी व्यक्ति अपने जन्म से नहीं कार्यों से महान बनता है। यह बात सन्तकवि रविदास ने अपने कार्य एवं व्यवहार से प्रमाणित कर दी। अपने कार्य के प्रति पूर्णतः समर्पित रहते हुए ईश्वर भक्तिपरक काव्य की रचना कर उन्होंने समाज को जो संदेश दिए वे आज भी प्रासंगिक हैं।

सन्त रविदास का जन्म काशी (वाराणसी) में हुआ। इनके पिता का नाम रग्घु तथा माता का नाम घुरबिनिया था। पिता चर्म व्यवसाय करते थे। सन्त रविदास भी वही व्यवसाय करने लगे। वे अपना कार्य पूरी लगन और परिश्रम से करते थे। समयपालन की आदत तथा मधुर व्यवहार के कारण लोग उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। साधु-सन्तों की सहायता करने में उन्हें अत्यन्त आनंद मिलता था।

स्वामी रामानन्द काशी के प्रतिष्ठित सन्त थे। रविदास उन्हीं के शिष्य हो गए। अपना कार्य पूरा करने के बाद वे अधिकतर समय स्वामी रामानन्द के साथ ही बिताते थे।

"मन चंगा तो कठौती में गंगा"

एक बार कुछ लोग गंगास्नान के लिए जा रहे थे। उन्होंने रविदास से भी गंगा स्नान के लिए चलने का आग्रह किया। रविदास ने कहा........"गंगा स्नान के लिए मैं अवश्य चलता किन्तु मैंने एक व्यक्ति को उसका सामान बनाकर देने का वचन दिया है। यदि मैं उसे आज उसका सामान नहीं दे सका तो वचन भंग होगा। गंगास्नान जाने पर भी मेरा मन तो यहाँ लगा रहेगा। मन जिस काम को अंतःकरण से करने को तैयार हो वही उचित है। मन शुद्ध है तो इस कठौती के जल में ही गंगा स्नान का पुण्य मिल जाएगा।" कहते हैं तभी से यह कहावत प्रचलित हो गई "मन चंगा तो कठौती में गंगा"।

रविदास का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज में अनेक बुराइयाँ फैली थीं, जैसे अन्धविश्वास, धार्मिक आडम्बर, छुआछूत आदि। रविदास ने इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। वे स्वरचित भजन गाते थे तथा समाज सुधार के कार्य

करते। उन्होंने लोगों को बताया कि बाह्य आडम्बर और भक्ति में बड़ा अंतर है। ईश्वर एक है। वह सबको समान भाव से प्यार करता है। यदि ईश्वर से मिलना है तो आचरण को पवित्र करो और मन में भक्ति-भाव जाग्रत करो। आरम्भ में लोगों ने रविदास का विरोध किया किन्तु इनके विचारों से परिचित होने के बाद सम्मान करने लगे।
रविदास कर्म को ही ईश्वरभक्ति मानते थे। वे कर्म में इतने लीन रहते थे कि कभी-कभी ग्राहकों को सामान तो बनाकर दे देते पर उनसे दाम लेना भूल जाते थे।
रविदास दिनभर कर्म करते और भजन गाते थे। काम से खाली होने पर वे अपना समय
साधुओं की संगति एवं ईश्वर भजन में बिताते थे। रविदास के भजनों का हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है।

रविदास के विचार-

राम, कृष्ण, करीम, राघव, हरि, अल्लाह, एक ही ईश्वर के विविध नाम हैं।
सभी धर्मों में ईश्वर की सच्ची अराधना पर बल दिया गया है।
वेद, पुराण, कुरान आदि धर्मग्रंथ एक ही परमेश्वर का गुणगान करते हैं।
ईश्वर के नाम पर किए जाने वाले विवाद निरर्थक एवं सारहीन हैं।
सभी मनुष्य ईश्वर की ही संतान हैं, अतः ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाना चाहिए।
अभिमान नहीं अपितु परोपकार की भावना अपनानी चाहिए।
अपना कार्य जैसा भी हो वह ईश्वर की पूजा के समान है।

सन्त रविदास के सीधे-सादे तथा मन को स्पर्श कर लेने वाले विचार लोगों पर सटीक प्रभाव डालते थे। लोगों को लगता था कि रविदास के भजनों में उनके ही मन की बात कही गई है। धीरे-धीरे उनके शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। वे लोगों को समाज-सुधार के प्रति जागरूक करते तथा प्रभु के प्रति आस्थावान होने के लिए प्रेरित करते। वे सामाजिक सुधार एवं लोगों के हित में निरन्तर तत्पर रहते थे।
सन्त कवि रविदास अपने उच्च विचारों के कारण समाज एवं हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनका जीवन कर्मयोग का आदर्श उदाहरण है। उन्होंने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान नहीं होता अपितु विचारों की श्रेष्ठता, समाज हित के कार्य, सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान बनाने में सहायक होते हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.सन्त रविदास का पैतृक व्यवसाय क्या था ?
2.सन्त रविदास के समय समाज में कौन-कौन सी बुराइयाँ फैली थीं ?
3.रविदास ईश्वर से मिलने के लिए कौन सा तरीका बताते हैं ?
4.मनुष्य को महान बनाने में कौन से गुण सहायक हैं ?
5.संत रविदास के मुख्य विचार क्या थे ?

योग्यता विस्तार

आपके घर पर क्या कार्य (***व्यवसाय***) ***होता है*** ? ***आपको यह कार्य कैसा लगता है*** ? ***कारण बताइए*** !

शेरशाह सूरी

शेरशाह के बचपन का नाम फरीद था। उसके पिता हसन खाँ सहसराम के जागीरदार थे। उनकी चार पत्नियाँ थीं वे अपनी छोटी पत्नी के प्रभाव में थे। फरीद की माँ से हसन की छोटी पत्नी की नहीं बनती थी। वह फरीद को तंग करती थी। फरीद अपनी सौतेली माँ के व्यवहार से दुःखी रहता था। परेशान होकर उसने सहसराम छोड़ दिया। वह जौनपुर चला गया। जौनपुर उन दिनों भारत का "शिराज" कहलाता था। वहाँ उसने अरबी, फारसी, इतिहास और दर्शन का अध्ययन किया। वह दस वर्ष तक वहाँ रहा जिससे उसके ज्ञान और अनुभव मंे पर्याप्त वृद्धि हुई।

हसन खाँ फरीद को सहसराम वापस ले गए और जागीर की व्यवस्था सौंपी। फरीद ने बड़ी कुशलता से जागीर का प्रबन्ध किया, सदैव प्रजा के हित को ध्यान में रखा। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों और जमींदारों पर कड़ा अनुशासन रखा। घूस लेने वाले अधिकारियों को हटाया। न्याय को शासन का आधार बनाया। जनता से अच्छा व्यवहार किया। आदेशांे की अवहेलना के लिए कड़ी सजा की व्यवस्था थी। प्रजा उनकी प्रशंसा करती थी और उनसे प्रेम करती थी।

जागीर की देखभाल करते समय फरीद को प्रशासन के अनेक अनुभव प्राप्त हुए जो आगे चलकर उसके काम आए। वह एक सफल शासक बना। उनकी प्रशंसा सौतेली माँ को सहन न हुई। उसने पिता-पुत्र में संघर्ष करा दिया। घरेलू परेशानियाँ सामने आईं। फरीद ने भारी मन से पुनः घर छोड़ दिया।

फरीद ने बिहार के सुल्तान के यहाँ नौकरी कर ली। शिकार के समय फरीद ने एक शेर से सुल्तान की रक्षा की। प्रसन्न होकर सुल्तान ने उसे शेरखाँ की उपाधि दी।

इसके बाद शेरखाँ ने मुगल बादशाह बाबर के यहाँ नौकरी की और मुगलों के बारे मे जानकारी प्राप्त की। वह अपने मित्र से कहा करते थे कि मैं मुगलों को भारत से निकाल सकता हूँ क्योंकि उनमें फूट है और अनुशासन की कमी है। बाबर बादशाह

शेरखाँ की प्रतिभा से सतर्क हो गया। उसने मंत्री से कहा, शेरखाँ पर नजर रखो। वह चालाक है। राजस्व के चिह्न उसके मस्तक पर दिखाई देते हैं। शेरखाँ मुगलों से अलग हो गया। वह कहता था कि "मुझे मुगलों में और उन्हें मुझमें विश्वास नहीं है।" आगे चलकर शेरखाँ ने शेरशाह सूरी के नाम से एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। बाबर ने उसकी प्रतिभा को सही आँका था। उसकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई।

शेरशाह चरित्रवान व्यक्ति था। वह अच्छा सेनापति था। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए उसने ऐसी मजबूत सेना तैयार की, जिसमें उत्तम चरित्र के आधार पर सीधी भर्ती होती थी। उत्तम नस्ल के घोड़े होते थे। पहचान के लिए शाही निशान लगाए जाते थे। उसके समय में उत्तमता पर विशेष बल दिया जाता था। नियमों का कड़ाई से पालन होता था।

शेरशाह नीति-कुशल शासक था। वह न्याय-प्रिय भी था और सभी धर्मों का ध्यान रखता था। राज्य के अधिकारियों को यात्रियों से अच्छा व्यवहार करने के लिए उसने कड़े आदेश दिए थे। राहगीरों की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध रखता था। राह में मृत्यु हो जाने पर राहगीर के माल को जब्त नहीं किया जाता था। चोरी होने पर गाँव का मुखिया (मुकद्दम) या जमींदार उत्तरदायी होता था। पता न लगा पाने की दशा में उसे स्वयं वही सजा भुगतनी पड़ती थी जो चोरों या लुटेरों को मिल सकती थी। रास्ते में हत्या हो जाने पर भी मुखिया या जमींदार को ही उत्तरदायी ठहराया जाता था। सजा के डर से अपराध नहीं होते थे। अधिकारी सतर्क थे। प्रजा सुरक्षित थी। कहा जाता है कि उस समय तक कमजोर वृद्धा भी सिर पर मूल्यवान गहनों का बक्सा लेकर बेखटक यात्रा कर सकती थी।

शेरशाह ने व्यापार को उन्नत किया। उसने आवागमन के साधनों को सुधारा। सड़कें बनवाईं। उनके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाए और थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सरायें बनवाईं तथा कुएँ खुदवाए। सरायों में यात्रियों के पद, धर्म, जाति के अनुसार भोजन की भी व्यवस्था रहती थी। सरायों में सुरक्षा का उचित प्रबन्ध था। ग्रैण्ट ट्रंक रोड उसी ने बनवाई थी। यह सड़क सिन्धु नदी से बंगाल के सोनार गाँव तक जाती है। अब इसका नाम शेरशाह सूरी मार्ग कर दिया गया है। शेरशाह सूरी अपनी सड़कों को साम्राज्य की धमनियाँ कहता था। इनसे व्यापार में सहायता मिलती थी। उनसे उसको शासन सम्बन्धी सभी सूचनाएँ भी सरलता से प्राप्त होती थीं।

शेरशाह में संगठन की अद्भुत क्षमता थी। वह अपने लक्ष्य को सदैव ध्यान में रखता था। मंत्रियों के हाथ में शासन देने में उसे विश्वास नहीं था। उसने भूमि की नाप कराई और राजस्व का निर्धारण किया। आज की व्यवस्था भी उसी आधार पर बनाई गई है।

शेरशाह सूरी समय का सदुपयोग करता था। सुबह से देर रात तक वह राज्य के कार्यों में व्यस्त रहता था। कठोर परिश्रम करता था, प्रजा की दशा जानने के लिए देश-भ्रमण करता था। जनता की सुख-सुविधाएँ बढ़ाने के लिए उसने शासन व्यवस्था को सुसंगठित किया।

रुपए के सिक्के सर्वप्रथम शेरशाह ने ही ढलवाये। उसने खोटे और मिली-जुली धातु के सिक्कों का चलन बन्द कर दिया। सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के ढलवाए गए। ये बढ़िया और मानक सिक्के थे। उसके समय बाट और माप की प्रणाली में सुधार हुआ।

भवन-निर्माण में भी शेरशाह की गहरी रुचि थी। उसने दिल्ली के निकट यमुना के तट पर एक नया नगर भी बसाया। वह विद्वानों को संरक्षण देता था। जायसी के 'पद्मावत' जैसे श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना उसी के समय में हुई।

शेरशाह ने पाँच वर्ष तक शासन किया। कालिंजर की विजय के समय तोप के गोले से घायल हो जाने से उसकी मृत्यु हो गई। यदि वह कुछ और समय तक जीवित रहता तो वे कार्य पूरे करवाता जिनके लिए बाद में अकबर को प्रसिद्धि मिली।

फरीद अपने अच्छे गुणों के कारण ही एक साधारण व्यक्ति से सम्राट शेरशाह सूरी बन गया। उसकी समस्त उपलब्धियाँ, उसके अपने परिश्रम और अच्छे गुणों का परिणाम थीं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *फरीद एक साधारण व्यक्ति से सम्राट किस प्रकार बना* ?
2. *शेरशाह ने कौन-कौन से कार्य किए* ?
3. *शेरशाह ने व्यापार को किस प्रकार उन्नत किया* ?
4. *शेरशाह एक नीति-कुशल शासक थे, स्पष्ट कीजिए।*
5. *शेरशाह में कौन-कौन से गुण थे* ?

पाठ - 20

चाँदबीबी

दक्षिण भारत के छोटे से राज्य अहमदनगर का मुगल साम्राज्य से लोहा लेना बड़े साहस का कार्य था किन्तु अहमदनगर ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि चाँदबीबी जैसी वीरांगना का कुशल नेतृत्व मिल जाय तो अकबर जैसे प्रतापी सम्राट की सेना को भी मुँह की खानी पड़ सकती है।

चाँदबीबी अहमदनगर के शासक हुसैन निजामशाह की पुत्री थीं। बाल्यकाल में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। इसलिए शासन का काम भी इनकी माँ देखती थीं। माँ ने चाँदबीबी की शिक्षा-दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया। थोड़े ही समय मंे चाँदबीबी रणनीति और राजनीति में कुशल हो गई।

चाँदबीबी का विवाह बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह से हुआ था। विवाह के कुछ दिनों बाद ही आदिल शाह की हत्या कर दी गई और गद्दी के लिए कई दावेदार खड़े हो गए। दरबार के अमीर और सरदार भी अलग-अलग गुटों में बँट गए और आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। दुःखी होकर चाँदबीबी अपने भाई के पास अहमदनगर चली गईं।

चाँदबीबी ने सोचा था कि अहमदनगर में वे शान्ति से अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगी किन्तु शान्ति से जीवन व्यतीत करना चाँदबीबी के भाग्य में नहीं था। कुछ समय बाद ही उनके भाई इब्राहिम की हत्या कर दी गई। दरबार के अमीर अपने-अपने उम्मीदवार को गद्दी दिलाने के लिए षड्यन्त्र करने लगे। दरबार के अमीरों की फूट और आपसी झगड़ों से अहमदनगर की शक्ति घट गई। राज्य की शासन-व्यवस्था पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा।

उस समय दक्षिण भारत में अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा और खान देश प्रमुख

राज्य थे। उत्तर भारत में शक्तिशाली सम्राट अकबर का विशाल मुगल साम्राज्य था। अकबर दक्षिण भारत को भी अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता था। उसने दक्षिण भारत के राज्यों के पास अपने दूतों से संदेश भेजा कि वे मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर लें जिससे अनावश्यक खून-खराबा न हो। खानदेश को छोड़कर अन्य किसी राज्य ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। अकबर ने अपने पुत्र मुराद को दक्षिण विजय के लिए भेजा।

दक्षिण के राज्यों की स्थिति अच्छी नहीं थी। एक राज्य की दूसरे राज्य से शत्रुता थी और राज्यों में दरबारियों के अलग-अलग गुटों से झगड़े चल रहे थे। अहमदनगर की स्थिति भी ऐसी ही थी। मुगल सेना ने अहमदनगर में घेरा डाल दिया था लेकिन दरबार के अमीर एक दूसरे को नीचा दिखाने में अपनी शक्ति बरबाद कर रहे थे। अमीरों का एक दल तो मुगलों से मिल भी गया था। चाँदबीबी ने देखा कि इस प्रकार आपसी फूट से पूर्वजों का स्थापित किया हुआ राज्य हाथ से निकल जाएगा और अहमदनगर का स्वतंत्र राज्य पराधीन हो जाएगा। उन्होंने दरबार के अमीरों तथा सरदारों से आपसी मतभेद भुलाकर अहमदनगर की रक्षा करने का वचन लिया।

यह चाँदबीबी की प्रथम सफलता थी। दरबार मंे अमीरों को संगठित करने के बाद उन्होंने बीजापुर राज्य से सन्धि की और इब्राहिम शाह के पुत्र को गद्दी पर बैठाकर शासन का कार्य सँभाल लिया। अहमदनगर का मोर्चा सुदृढ़ करने के लिए चाँदबीबी स्वयं बुरका पहनकर घोड़े पर सवार होकर युद्ध की तैयारी देखती थीं। वे मोर्चों पर जाकर सैनिकों का उत्साह बढ़ाती थीं, उनका आह्वान करतीं कि यह राज्य के मान-अपमान का प्रश्न है, आओ ! मेरे साथ आओ और बहादुरी से युद्ध करो। चाँदबीबी के साहस, धैर्य और शौर्य को देखकर सैनिकों का उत्साह बढ़ जाता था।

युद्ध कई दिनों तक चला। विशाल मुगल सेना अहमदनगर के छोटे से राज्य को दबा न सकी। एक दिन मुगल सेना ने सुरंग लगाकर किले की एक दीवार को उड़ा दिया। अहमदनगर के सैनिक घबड़ा गए क्यांेकि अब मुगल सेना को रास्ता मिल गया था। मुगल सेना भी खुश थी कि अब तो विजय निश्चित ही है किन्तु चाँदबीबी रात भर दीवार पर खड़े होकर सैनिकों और कारीगरों का उत्साह बढ़ाती रही। रातों-रात किले की दीवार की मरम्मत कर दी गई। मुगल सेना यह देखकर आश्चर्य चकित रह गई।

अहमदनगर का घेरा चलता रहा। न तो चाँदबीबी हार मानने को तैयार थी और न ही मुगल सेना घेरा उठाने को तैयार थी। एक बार अहमदनगर की सेना के पास तोपों के गोले समाप्त हो गए। सैनिकों में निराशा छा गई किन्तु चाँदबीबी ने धैर्य और सूझबूझ से काम लिया। उन्होंने सोने-चाँदी के गोले ढलवाए जिनका प्रयोग तोपों मंे किया गया।

इधर अहमदनगर की सेना के पास साधन कम हो रहे थे और उधर मुगल सेना ने भी अनुभव किया कि चाँदबीबी पर विजय प्राप्त करना आसान नहीं है। दोनों पक्ष युद्ध से ऊब गए थे। अतः वे सन्धि करने को तैयार हो गए। चाँदबीबी ने बरार का क्षेत्र अकबर को देना स्वीकार कर लिया।

सन्धि के बाद बहुत दिनों तक मुगलों ने अहमदनगर की ओर आँख नहीं उठाई। पाँच वर्ष बाद मुगलों ने अहमदनगर पर पुनः आक्रमण किया किन्तु इस समय चाँदबीबी नहीं थी। दरबार के अमीरों ने षड्यन्त्र करके इस महान महिला की हत्या कर दी थी।

मुगल सम्राट अकबर भी चाँदबीबी की बहादुरी और हिम्मत की इज्जत करने लगा था। कहा जाता है कि अहमदनगर पर विजय प्राप्त करने के बाद अकबर ने उन सरदारों को ढुँढ़वाकर प्राण दण्ड दिया जो चाँदबीबी की हत्या के लिये उत्तरदायी थे।

धन्य है चाँदबीबी जिनके स्वतन्त्रता, प्रेम, धैर्य, शौर्य और साहस के कारण उनके शत्रु भी उनकी इज्जत करते थे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. चाँदबीबी कौन थीं?
2. चाँदबीबी का मुगलों से युद्ध क्यों हुआ?
3. मुगल सेना क्या देखकर आश्चर्यचकित हो गई?
4. चाँदबीबी बहुत साहसी तथा वीर महिला थीं-इस कथन पर प्रकाश डालिए।
5. चाँदबीबी के जीवन की उन घटनाओं का वर्णन करिए जिनसे पता चलता हो कि वे बहुत धैर्य वाली महिला थीं।

पाठ - 21

नानक देव

पिता ने बुला कर कहा "पुत्र, बाला के साथ लाहौर जाओ और कोई सच्चा सौदा करो।" पिता की बात मानकर वे चल पड़े। रास्ते में एक जगह कुछ साधु तपस्यारत दिखाई पड़े। उन्हें चिन्ता हुई कि इनके खाने-पीने की व्यवस्था कौन करता होगा? वे बाला से बोले- "भाई बाला, पिताजी ने सच्चा सौदा करने को कहा है। देखो न इससे सच्चा सौदा और क्या होगा कि हम इन साधुओं को भोजन कराएँ।" इतना कहकर नानक ने पास के गाँव से खाने-पीने की सामग्री मँगाई और साधुओं को भरपेट भोजन कराया, फिर घर लौट आए। उनके खाली हाथ लौटने पर पिता बहुत नाराज़ हुए। नानक ने कहा-"पिताजी, मैंने तो सच्चा सौदा ही किया है। कर्म करते हुए अपना मन वाहे गुरु में लगाना, भले लोगों की संगति करना और मिल बाँटकर खाना यही तो सच्चा सौदा है।

यह घटना सिखों के प्रथम गुरु 'नानक देव' के जीवन की है, जो मानवता के परम उपासक थे। वे मनुष्य की सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते थे।

बचपन से ही नानक धर्म और ईष्वर सम्बन्धी बातों में रुचि लेने लगे थे। वे अधिकतर साथियों के साथ भजन-कीर्तन में मस्त रहते थे। उनके पिता को पुत्र के ये सारे कार्य पसन्द नहीं थे। नानक को षिक्षा-दीक्षा के लिए पाठषाला भेजा गया परन्तु वहाँ भी नानक पढ़ने-लिखने के स्थान पर ज्ञान और भक्ति की बातें किया करते थे। जहाँ अन्य बच्चे समय से अपने पाठ यादकर कक्षा में सुनाया करते, वहीं नानक सदैव गुमसुम रहते थे।

वे एकान्त में बैठकर घण्टों तक चुपचाप मनन और चिन्तन किया करते थे। वे ईष्वर के भजन और कीर्तन में इतने लीन रहते थे कि खान-पान की भी सुध न रहती। धीरे-

धीरे उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। पिता को लगा कि नानक को कोई असाध्य रोग हो गया है। वे उनके इलाज के लिए उपाय खोजने लगे।

लेकिन कोई रोग हो तब तो। पीड़ा तो नानक के हृदय में थी इस पीड़ा को नाड़ी पकड़ने वाला वैद्य भला क्या समझता?कृकृकृकृ

वैद्य ने नानक की नाड़ी देखी लेकिन उन्हें किसी रोग का पता नहीं चला। तब नानक ने अपने पिता से कहा-

वैद्य बुलाया वैदगी, पकड़ि टटोले बाँहि।

भोला वैद्य न जानगी, करक कलेजे माँहि।

अर्थात् आयुर्वेद का वैद्य केवल बाँह या नाड़ी टटोल कर मेरे रोग का पता नहीं लगा सकता क्योंकि पीड़ा तो मेरे मन में है।

नानक कुछ और बड़े हुए तो पिता को यह चिन्ता सताने लगी कि उनके व्यापार को कौन सँभालेगा? नानक का मन तो व्यापार में लगता ही नहीं था। यह बड़ा होकर क्या करेगा ? लेकिन उनकी बहन नानकी अपने 'वीर' में असाधारण तेज देखती थीं। वे समझ चुकी थीं कि उनका भाई नानक आगे चलकर ज़रूर एक तेजस्वी पुरुष होगा, पर पिता को ये बातें कतई पसन्द नहीं थीं। वे चाहते थे कि उनका बेटा उनकी बताई राह पर चले पर बेटे ने तो स्वयं ही अपनी राह चुन ली थी।

धीरे-धीरे नानक की ख्याति चारों ओर फैलने लगी। उनके ज्ञान, सत्संग, भजन आदि गुणों की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी। लोगों के मन में यह बात धीरे-धीरे घर करने लगी कि-"मेहता जी का बेटा तो कोई सिद्ध पुरुष है।"

इधर पिता की चिन्ता और बढ़ गई कि यदि नानक संन्यासी हो गए तो उनका वंष कैसे चलेगा ? उन्होंने नानक को व्यापार के लिए अपने दामाद के साथ सुल्तानपुर भेज दिया। नानक को वहाँ पर सरकारी गल्ले की दुकान में काम मिल गया। वे अपना काम ईमानदारीपूर्वक करने लगे। काम के साथ गरीबांे-दुखियों को मुफ्त भोजन कराना, साधु-संतों की सेवा करना और ईष्वर का भजन करना उनकी दिनचर्या थी। धीरे-धीरे इस काम से वे ऊबने लगे। बहन नानकी ने सोचा कि इनका विवाह कर दिया जाय तो शायद इनका मन ऐसे कामों में लगने लगे। फिर क्या था ? आनन-फानन में उनकी शादी गुरुदासपुर निवासी मूलचन्द की पुत्री सुलक्षणी देवी से कर दी गई। श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामक उनके दो पुत्र भी हुए लेकिन उनका मन परिवार और सांसारिक कामों में फिर भी नहीं लगा।

नानक का हाल-चाल लेने के लिए पिता ने मरदाना रबानी को भेजा। मरदाना भी नानक के पास जाकर उनका परम भक्त बन गया। वह नानक के साथ खंजड़ी बजाकर गाता रहता था। नानकदेव उसके साथ देष-विदेष की यात्रा पर निकल पड़े तथा ऊँच-नीच, छोटे-बड़े के भेदभाव को दूर करने के लिए तरह-तरह के प्रयास करते रहे।

उन्हें सामाजिक विषमता अखरती थी। नानक गरीब और दुखियारों को देखकर द्रवित हो उठते। वे सदैव से दीनों और गरीबों की सहायता करते थे।

नानक देव ने विभिन्न स्थानों की यात्रा की। वे अपनी यात्राओं के क्रम में अफगानिस्तान, काबुल, अरब, तिब्बत आदि देषों में गए और अपने ज्ञान का प्रकाष

फैलाया। वे मानवता के महान उपासक थे और जीवन पर्यन्त मानव में आपसी समानता की बात करते रहे। उनका कहना था कि अत्याचारों को सहन करना सबसे बड़ा पाप है। उनकी मान्यता थी कि ईष्वर एक है। वे उसी के उपासक थे और उसे ही पूरी सष्टि का नियंता मानते थे।

यह भी एक संयोग ही है कि उनकी समाधि और मकबरे की दीवार एक ही है। ऐसी धार्मिक एकता की मिसाल दुनिया में और कहीं नहीं मिलती।

कहते हैं कि समर्थ व्यक्ति के पीछे दुनिया चलती है। ऐसे पुरुष अपनी छाप समाज पर कई तरह से छोड़ जाते हैं। ऐसे ही थे मानवता के महान उपासक नानकदेव जिनकी ख्याति आज भी दुनिया के कोने-कोने में गँूज रही है।

तलवण्डी से ननकाना साहब

नानक देव की ख्याति से अभिभूत हो उनके षिष्यों ने उनके गाँव तलवण्डी का नाम ही बदल दिया। तलवण्डी अब 'ननकाना साहब' के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान अब पाकिस्तान में स्थित है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.नानक की दृष्टि में सच्चा सौदा क्या था ?

2.नानक के पिता को क्या चिन्ता थी ?

3.नानक की रुचि किन बातों में थी ?

4.सही (√) अथवा गलत (ग) का निषान लगाइए-

अ. नानक का जन्म तलवण्डी नामक गाँव में हुआ था।

ब. नानक को व्यवसाय में आनन्द आने लगा।

स. नानक गरीब एवं दुखियारों को देखकर द्रवित हो उठते।

द. नानक चंचल प्रवष्त्ति के बालक थे।

5.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क.नानक ने कहा मैंने तो .... किया है पिताजी।

ख................................. भी नानक ने पास आकर उनका परम भक्त बन गया।

ग.नानक देव .... के घोर विरोधी थे।

घ.तलवण्डी अब .... के नाम से प्रसिद्ध है।

6.सूची बनाइए-

उन कामों की जो यह पाठ पढ़ने के बाद नहीं करना चाहेंगे।

उन आदतों की सूची बनाइए जिनमें यह पाठ पढ़ने के बाद बदलाव करना चाहेंगे।

7.अपने परिवार जनों व अन्य लोगों से बात करके अपने आस-पास के किसी व्यक्ति

के बारे में लिखिए जिसने विषेष उल्लेखनीय कार्य किया हो।

पाठ - 22

महाराणा प्रताप

मेवाड़ की सारी सेना छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। धन सम्पत्ति कुछ भी नहीं बचा था। सेना को संगठित करने हेतु तथा मुगल सैनिकों से अपने को बचाने के लिए वह राजपुरुष परिवार सहित जंगल में भटक रहा था। पूरे परिवार ने कई दिनों से खाना नहीं खाया था। पास में थोड़ा आटा था। उनकी पत्नी ने रोटियाँ बनाई। सभी खाने की तैयारी कर रहे थे तभी एक जंगली बिलाव रोटियाँ उठा ले गया। पूरा परिवार भूख से छटपटाता रह गया। भूख से बच्चों की हालत गंभीर हो रही थी। ऐसी दशा देखकर पत्नी ने पुनः घास की रोटियाँ बनाई जिन्हें खाकर पूरे परिवार ने अपनी भूख शान्त की।

त्याग, बलिदान, निरन्तर संघर्ष और स्वतंत्रता के रक्षक के रूप में देशवासी जिस महापुरुष को सदैव याद करते हैं, उनका नाम है 'महाराणा प्रताप'। उन्होंने आदर्शों, जीवन मूल्यों एवं स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया। इसी कारण महाराणा प्रताप का नाम हमारे देश के इतिहास में महान देशभक्त के रूप में आज भी अमर है। महाराणा प्रताप का जन्म राजस्थान के उदयपुर नगर में हुआ था। बचपन से ही उनमें वीरता कूट-कूट कर भरी थी। गौरव, सम्मान, स्वाभिमान व स्वतंत्रता के संस्कार उन्हें पैतृक रूप में मिले थे। राणा प्रताप का व्यक्तित्व ऐसे अपराजेय पौरुष तथा अदम्य साहस का प्रतीक बन गया है कि उनका नाम आते ही मन में स्वाभिमान, स्वातन्×य-प्रेम तथा स्वदेशानुराग के भाव जाग्रत हो जाते हैं।

मुगल सम्राट अकबर एक महत्वाकांक्षी शासक था। वह सम्पूर्ण भारत पर अपने साम्राज्य का विस्तार चाहता था। उसने अनेक छोटे-छोटे राज्यों को अपने अधीन करने के बाद मेवाड़ राज्य पर चढ़ाई की। उस समय मेवाड़ में राणा उदय सिंह का

शासन था। राणा उदय सिंह के साथ युद्ध में अकबर ने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ सहित राज्य के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। राणा उदय सिंह ने उदयपुर नामक नई राजधानी बसाई। 1572 ई0 में प्रताप के शासक बनने के समय राज्य के सामने बड़ी संकटपूर्ण स्थिति थी। शक्ति और साधनों से सम्पन्न आक्रामक मुगल सेना से मेवाड़ की स्वतंत्रता और परम्परागत सम्मान की रक्षा का कठिन कार्य प्रताप के साहस की प्रतीक्षा कर रहा था।

अकबर की साम्राज्य विस्तार की लालसा तथा राणा प्रताप की स्वातंत्र्×य-रक्षा के दृढ़ संकल्प के बीच संघर्ष होना स्वाभाविक था। अकबर ने राणा प्रताप के विरुद्ध ऐसी कूटनीतिक व्यूह रचना की थी कि उसे मुग़ल सेना के साथ ही मान सिंह के नेतृत्व वाली राजपूत सेना से भी संघर्ष करना पड़ा। इतना ही नहीं, राणा का अनुज शक्ति सिंह भी मुग़ल सेना की ओर से युद्ध में सम्मिलित हुआ। ऐसी विषम स्थिति में भी राणा ने साहस नहीं छोड़ा और अपनी छोटी सी सेना के साथ हल्दीघाटी में मोर्चा जमाया। हल्दीघाटी युद्ध में मुग़ल सेना को नाकों चने चबाने पड़े। राणा के संहारक आक्रमण से मुगल सेना की भारी क्षति हुई, किन्तु विशाल मुग़ल सैन्य शक्ति के दबाव से घायल राणा को युद्ध-भूमि से हटना पड़ा।

इस घटना से सरदार झाला, राणा के प्रिय घोड़े चेतक और अनुज शक्ति सिंह को विशेष प्रसिद्धि मिली। सरदार झाला ने राणा को बचाने के लिए आत्म बलिदान किया। उसने स्वयं राणा का मुकुट पहन लिया, जिससे शत्रु झाला को ही राणा समझकर उस पर प्रहार करने लगे। घोड़े चेतक ने घायल राणा को युद्ध-भूमि से बाहर सुरक्षित लाकर ही अपने प्राण त्यागे तथा शक्ति सिंह ने संकट के समय में राणा की सहायता कर अपने पहले आचरण पर पश्चाताप किया।हल्दी घाटी का युद्ध भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। इससे अकबर और राणा के बीच संघर्ष का अंत नहीं हुआ वरन् लम्बे संघर्ष की शुरुआत हुई। राणा प्रताप ने समय और परिस्थितियों के अनुसार अपनी युद्ध नीति को बदला तथा शत्रु सेना का यातायात रोक कर और छापामार युद्ध की नीति अपनाकर मुग़ल सेना को भारी हानि पहँुचाई। इससे मुग़ल सेना के पैर उखड़ने लगे। धीरे-धीरे राणा ने चित्तौड़, अजमेर तथा मंडलगढ़ को छोड़कर मेवाड़ का सारा राज्य मुग़लों के अधिकार से मुक्त करा लिया।

बीस वर्षों से अधिक समय तक राणा प्रताप ने मुग़लों से संघर्ष किया। इस अवधि में उन्हें कठिनाइयों तथा विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। सारे किले उनके हाथ से निकल गये थे। उन्हें परिवार के साथ एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर भटकना पड़ा। कई अवसरों पर उनके परिवार को जंगली फलों से ही भूख शान्त करनी पड़ी, फिर भी राणा प्रताप का दृढ़ संकल्प हिमालय के समान अडिग और अपराजेय बना रहा। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं मुग़लों की अधीनता कदापि स्वीकार नहीं करूँगा और जब तक चित्तौड़ पर पुनः अधिकार न कर लूँगा तब तक पत्तलों पर भोजन करूँगा और जमीन पर सोऊँगा। उनकी इस प्रतिज्ञा का मेवाड़ की जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा और वह संघर्ष में राणा के साथ जुड़ी रही। संकट की इस घड़ी में मेवाड़ की सुरक्षा के लिए उनके मंत्री भामाशाह ने अपनी सारी सम्पत्ति राणा को सौंप दी। वर्ष 1572 ई0 में सिंहासन पर बैठने के समय से लेकर 1597 ई0 में मृत्यु पर्यन्त राणा ने

अद्भुत साहस, शौर्य तथा बलिदान की भावना का परिचय दिया। मेवाड़ उत्तरी भारत का एक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली राज्य था। राणा सांगा के समय में राजस्थान के लगभग सभी शासक उनके अधीन संगठित हुए थे। अतः मेवाड़ की प्रभुसत्ता की रक्षा तथा उसकी स्वतंत्रता को बनाए रखना राणा प्रताप के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य था। इसी के लिए वे जिए और मरे। युवराज अमर सिंह सुख-सुविधापूर्ण जीवन के अभ्यस्त थे। महाराणा को अपनी मरणासन्न अवस्था में इसी बात की सर्वाधिक चिन्ता थी कि अमर सिंह मेवाड़ की रक्षा के लिए संघर्ष नहीं कर सकेगा। इस चिन्ता के कारण उनके प्राण शरीर नहीं छोड़ पा रहे थे। वे युवराज और राजपूत सरदारों से मेवाड़ की रक्षा का वचन चाह रहे थे। अमर सिंह और उपस्थित राजपूत सरदारों ने उनकी मनोदशा को समझकर अन्तिम साँस तक मेवाड़ को स्वतंत्र कराने का संकल्प लिया। आश्वासन पाने पर उन्होंने प्राण त्याग दिया। राणा प्रताप का नाम हमारे इतिहास में महान देशभक्त के रूप में अमर है। वीर महाराणा प्रताप के अदम्य साहस तथा शौर्य की सराहना करते हुए प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार कर्नल टाड ने लिखा है कि "अरावली की पर्वतमाला में एक भी घाटी ऐसी नहीं है, जो राणा प्रताप के पुण्य कार्य से पवित्र न हुई हो, चाहे वहाँ उनकी विजय हुई हो या यशस्वी पराजय।" प्रताप का जीवन स्वतंत्रता-प्रेमियों को सतत् प्रेरणा प्रदान करने का अनन्त स्रोत है। उनका वीरतापूर्ण संघर्ष साधारण जन-मानस में उत्साह की भावना जाग्रत करता रहेगा।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. महाराणा प्रताप का जन्म कहाँ हुआ था तथा इनके पिता का क्या नाम था ?
2. छापामार युद्ध नीति किसने और क्यों अपनाई?
3. राणा प्रताप ने कौन सी प्रतिज्ञा की थी?
4. राणा प्रताप को किन गुणों के कारण लोग श्रद्धा से याद करते हैं ?
5. मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए महाराणा प्रताप ने कौन-कौन से कष्ट सहे ?
6. सही (√) अथवा गलत (x) का निशान लगाइए-

(क) महाराणा प्रताप का संघर्ष आर्यों से हुआ।
(ख) राणा प्रताप के जीवन का आदर्श मेवाड़ की सत्ता को बनाए रखना था।
(ग) राणा प्रताप का नाम हमारे इतिहास में स्वतंत्रता सेनानी के रूप में अमर है।
(घ) हल्दी घाटी का युद्ध हल्दी के लिए हुआ।

7. नीचे लिखे प्रश्न के दिए गए विकल्पों में से सही उत्तर छाँटकर लिखिए-

सरदार झाला ने स्वयं राणा का मुकुट पहन लिया क्योंकि-
(क) वह राजा बनना चाहता था। (ख) मुकुट में अनेक हीरे-पन्ने लगे थे।
(ग) वह शत्रु को भ्रमित करना चाहता था। (घ) वह सुंदर दिखना चाहता था।

8. उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) राणा प्रताप ने आदर्शों की रक्षा के लिए अपना .... दाँव पर लगा दिया।

(ख) .... ने राणा को बचाने के लिए स्वयं का बलिदान कर दिया।

(ग) राणा प्रताप का संकल्प .... के समान अडिग था।

(घ) जन्मभूमि की .... के लिए राणा प्रताप मृत्युपर्यंत संघर्ष करते रहे।

9. महाराणा प्रताप के जीवन की किस घटना ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया और क्यों? साथियों के साथ चर्चा कीजिए और अपनी कॉपी में लिखिए।

10. आपकी नजर में महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व के कुछ खास गुण कौन-कौन से हैं ?

अहिल्याबाई

बचपन के संस्कार ही बच्चों के भविष्य का निर्माण करते हैं। औरंगाबाद जिले के चौंडी ग्राम में सन् 1725 में जन्मीं अहिल्याबाई अपने माता-पिता की लाडली बेटी थीं। इनके माता-पिता धार्मिक प्रवृत्ति के थे। इनके पिता मानकाजी शिंदे सहज, सरल स्वभाव के नेक इंसान थे। माता सुशीलाबाई अपनी बेटी को नित्य मन्दिर ले जातीं, पूजा-अर्चना करातीं और कथा-भागवत और पुराण सुनाती थीं। वहीं से उनमें श्रेष्ठ आचरण और व्यवहार के संस्कार पड़े।

एक बार अहिल्याबाई पूजा के लिए शिवमंदिर में गईं। संयोग से मालवा के सूबेदार मल्हारराव होल्कर भी वहाँ पहुँच गए। वे अहिल्याबाई की एकाग्रता और भक्ति से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अहिल्याबाई को अपनी पुत्रवधू बनाने का निश्चय किया। अहिल्याबाई का विवाह मल्हारराव के पुत्र खाण्डेराव के साथ हो गया। खाण्डेराव राजकाज में रुचि नहीं लेते थे। उन्हें हथियार चलाना भी नहीं आता था। एक बार अहिल्याबाई ने पति खाण्डेराव को समझाते हुए कहा "स्वामी आप राजपुत्र हैं। होल्कर राज्य के उत्तराधिकारी हैं। वीर-पराक्रमी पिता के पुत्र हैं, फिर भी इन हथियारों से डरते हैं। जिन अस्त्र-शस्त्रों को आपने कक्ष में सजा कर रखा है, उन्हें तो आपके सबल हाथो में होना चाहिए।"

अहिल्याबाई की सीख ने खाण्डेराव की सोई हुई वीरता को जगा दिया। वे राज-काज में रुचि लेने लगे और निरन्तर प्रयास से अस्त्र-शस्त्र चलाना भी सीख लिया।

अहिल्याबाई राजकाज में अत्यन्त दक्ष थीं। उनकी बुद्धि तथा कार्य-कुशलता से मल्हारराव अत्यन्त प्रभावित थे। वे अहिल्याबाई की सूझ-बूझ पर इतना विश्वास

करते थे कि बाहर जाते समय राज्य का भार उन्हीं पर छोड़ जाते।
दुर्भाग्यवश अहिल्याबाई पर कठिनाइयों का पहाड़ टूट पड़ा। एक युद्ध में उनके पति खाण्डेराव वीरगति को प्राप्त हो गए। अहिल्याबाई उस समय की प्रथा के अनुसार पति के शव के साथ सती होना चाहती थीं। मल्हारराव ने उन्हें समझाते हुए कहा, "बेटी ! मैंने तुम्हें राज काज की शिक्षा दी है और कभी भी अपने पुत्र से कम नही माना। अब तुम्हें ही शासन की बागडोर सँभालनी होगी। मैं समझूँगा तुम्हीं में मेरा पुत्र जीवित है।"

अहिल्याबाई ने दत्तचित्त होकर प्रजा की सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। अभी वह पति की मृत्यु के दुःख से उबर भी न पाई थीं कि श्वसुर मल्हारराव की भी मृत्यु हो गई। मल्हारराव की मृत्यु के बाद अहिल्याबाई व खाण्डेराव का पुत्र होल्कर गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी साबित हुआ। राज्य की बागडोर हाथ में आते ही वह मनमानी कर प्रजा को सताने लगा। यह देख अहिल्याबाई ने पुत्र को समझाते हुए कहा, "राजा प्रजा का पालक होता है। वह प्रजा के दुःख और कठिनाइयों को दूर करता है। यदि तुम ही प्रजा को दुःख दोगे तो वह कहाँ जायेगी ? प्रजा से प्यार करो, उसके लिए कल्याणकारी कार्य करो।"
मालेराव ने माँ की एक न सुनी। उसके अत्याचार बढ़ते गए जिनके कारण उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।
पुत्र वियोग से अहिल्याबाई को अत्यन्त कष्ट हुआ, फिर भी आँसू पोंछकर अत्यन्त धैर्य, साहस और हिम्मत के साथ वह राज्य की स्थिति सँभालने में जुट गईं। अहिल्याबाई ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेने की घोषणा कर दी। इससे कुछ लोगों में बौखलाहट मच गई। मराठा पेशवा बालाजी राव के पुत्र रघुनाथ राव (राघोवा) ने अहिल्याबाई के पास संदेश भेजा कि "शासन करने का अधिकार केवल पुरुषों को है आप हमें राज्य सौंप दें।" अहिल्याबाई ने स्वाभिमानपूर्वक उत्तर दिया," राज्य है कहाँ ? राज्य तो मैं भगवान शिव के चरणों में अर्पित कर चुकी हूँ। मैं तो केवल सेविका की भाँति इस धरोहर की रक्षा कर रही हूँ।"
शत्रुओं से राज्य की रक्षा करने के लिए उन्होंने महिलाओं की सेना तैयार की। महिला सैनिकों को उन्होंने स्वयं हथियार चलाना सिखाया तथा युद्ध एवं रण-व्यूह का प्रशिक्षण दिया। अहिल्याबाई की सेना में अत्यंत उत्साह था। जब दादा राघोवा, होल्कर राज्य हड़पने के लिए सेना सहित उज्जैन पहुँचे तब क्षिप्रा नदी के तट पर अहिल्याबाई की सेना की जोरदार युद्ध की तैयारी देखकर राघोवा के हौसले पस्त हो गए।
बाहरी शत्रुओं से राज्य की सुरक्षा में व्यस्त रहने के कारण उनके आन्तरिक शासन में शिथिलता आ गई। चोर-डाकुओं का आतंक बढ़ने लगा। यह देखकर उन्हें बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने घोषणा की कि जो मेरे राज्य में चोर-डाकुओं का आतंक समाप्त कर देगा उसके साथ मैं अपनी पुत्री मुक्ताबाई का विवाह करूँगी। इस प्रस्ताव पर एक सुंदर और बलवान युवक यशवन्त राव फणसे खड़ा हुआ। उसने कहा-मैं होल्कर राज्य से चोर डाकुओं का आतंक समाप्त कर दूँगा, किन्तु मुझे पर्याप्त धन और सेना चाहिए।"

अहिल्याबाई ने उसकी पूरी सहायता की। दो वर्षों में राज्य की स्थिति सुधर गई। यशवन्त राव की वीरता से प्रभावित होकर अहिल्याबाई ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

अहिल्याबाई कुशल शासक थीं। एक माँ की तरह वह अपनी प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रखतीं और प्रजा की भलाई के लिए सदैव प्रयासरत रहतीं। कोई भी व्यक्ति उनके पास जाकर अपना कष्ट कह सकता था। उनकी उदारता और स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण प्रजा उन्हें "माँ साहब" कहती थी। अहिल्याबाई ने अनेक तीर्थस्थानों पर मंदिरों, घाटों और धर्मशालाओं का निर्माण करवाया। उन्होंने गरीबों और अनाथों के लिए भोजन का प्रबन्ध करवाया।

ऐसी उदार, धार्मिक, वीर और साहसी महिला का जीवन कष्टों में ही बीता। श्वसुर, पति और पुत्र की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। दामाद यशवन्तराव की भी असमय मृत्यु हो गयी किन्तु माँ साहब ने इन दुःखद परिस्थितियों में भी अपना धैर्य नहीं खोया। वे निष्ठा और सूझबूझ के साथ राज्य का प्रबंध करती रहीं। अंत में साठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने यह संसार सदा के लिए छोड़ दिया। उनके बारे में ये उक्तियाँ सत्य ही हैं-

"अहिल्याबाई पुरुषार्थ, दूरदर्शिता व महानता में अद्वितीय हैं। कोई भी इन बातों में उनकी बराबरी नहीं कर सकता है।"

-नाना फड़नवीस

"अहिल्याबाई का व्यक्तित्व वज्र सा कठोर तथा फूल सा कोमल था। संसार व्यक्ति की पूजा नहीं करता अपितु उसके दृष्टिकोण व कार्य की पूजा करता है।"

-आचार्य विनोबा भावे

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *अहिल्याबाई का जन्म कब और कहाँ हुआ था* ?
2. *अहिल्याबाई में धार्मिक संस्कार कैसे पड़े* ?
3. *अहिल्याबाई को प्रजा 'माँ साहब' क्यों कहती थी* ?
4. *प्रजा हित के लिए अहिल्याबाई ने क्या-क्या कार्य किए* ?
5. *अहिल्याबाई को किन-किन दुःखद परिस्थितियों का सामना करना पड़ा* ?
6. **सही (√) अथवा गलत (X) निशान लगाइए-**

(क) *अहिल्याबाई ने अपनी पुत्री का विवाह यशवंत राव के साथ किया।*

(ख) *अहिल्याबाई ने महिलाओं के सेना तैयार की।*

(ग) *अहिल्याबाई सदैव प्रजा के हित में तत्पर रहीं।*

(घ) *अहिल्याबाई कुशल शासक न थीं।*

7. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) *अहिल्याबाई की सेना की जोरदार तैयारी देखकर* .... *के हौसले पस्त हो गए।*

(ख) *अहिल्याबाई ने पुत्र को समझाते हुए कहा - राजा प्रजा का* .... *होता है। वह प्रजा के* .... *तथा* .... *दूर करता है।*

(ग) *मल्हारराव की मृत्यु के बाद* .... *गद्दी पर बैठा।*

(घ) *अहिल्याबाई ने अनेक तीर्थ स्थानों पर* .... *और* .... *निर्माण करवाया।*

8. नीचे लिखे प्रश्न के दिए गए विकल्पों में से सही उत्तर चुनकर लिखिए

अहिल्याबाई ने अपनी पुत्री का विवाह यशवंत राव के साथ इसलिए किया-

(क) *क्योंकि वह बहुत सुंदर था।*

(ख) *क्योंकि वह कुशल प्रशासक था।*

(ग) *क्योंकि वह राजकुमार था।*

(घ) *क्योंकि वह वीर था।*

योग्यता-विस्तार

अहिल्याबाई के जीवन के किन-किन गुणों को आप अपने जीवन में अपनाने का प्रयास करेंगे।

पाठ - 24

महाराजा रणजीत सिंह

एक मुसलमान खुषनवीस ने अनेक वर्षों की साधना और श्रम से कुरान शरीफ की एक अत्यन्त सुन्दर प्रति सोने और चाँदी से बनी स्याही से तैयार की। उस प्रति को लेकर वह पंजाब और सिंध के अनेक नवाबों के पास गया। सभी ने उसके कार्य और कला की प्रषंसा की परन्तु कोई भी उस प्रति को खरीदने के लिए तैयार न हुआ। खुषनवीस उस प्रति का जो भी मूल्य माँगता था, वह सभी को अपनी सामर्थ्य से अधिक लगता था। निराष होकर खुषनवीस लाहौर आया और महाराजा रणजीत सिंह के सेनापति से मिला। सेनापति ने उसके कार्य की बड़ी प्रषंसा की परन्तु इतना अधिक मूल्य देने में उसने खुद को असमर्थ पाया। रणजीत सिंह ने भी यह बात सुनी और उस खुषनवीस को अपने पास बुलवाया। खुषनवीस ने कुरान शरीफ की वह प्रति महाराज को दिखाई। महाराजा रणजीत सिंह ने बड़े सम्मान से उसे उठाकर अपने मस्तक से लगाया और अपने वजीर को आज्ञा दी- ''खुषनवीस को उतना धन दे दिया जाए, जितना वह चाहता है और कुरान शरीफ की इस प्रति को मेरे संग्रहालय में रख दिया जाए।''

महाराज के इस कार्य से सभी को आष्चर्य हुआ। फकीर अजीमुद्दीन ने पूछा-'' हुजूर, आपने इस प्रति के लिए बहुत बड़ी धनराषि दी है, परन्तु वह तो आपके किसी काम की नहीं है, क्योंकि आप सिख हैं और यह मुसलमानों की धर्मपुस्तक है।''

महाराज ने उत्तर दिया- ''फकीर साहब, ईष्वर की यह इच्छा है कि मैं सभी धर्मों को एक नजर से देखूँ।''

पंजाब के लोक जीवन और लोक कथाओं में महाराजा रणजीत सिंह से सम्बन्धित अनेक कथाएँ कही व सुनी जाती हैं। इसमें से अधिकांष कहानियाँ उनकी उदारता, न्यायप्रियता और सभी धर्मों के प्रति सम्मान को लेकर प्रचलित हैं। उन्हें अपने जीवन में प्रजा का भरपूर प्यार मिला। अपने जीवन काल में ही वे अनेक लोक गाथाओं और जनश्रुतियों का केन्द्र बन गए थे।

महाराजा रणजीत सिंह ने देष की अनेक मस्जिदों की मरम्मत करवाई और मंदिरों को दान दिया। उन्होंने काषी विष्वनाथ मंदिर (वाराणसी) के कलष को 22 मन सोना देकर उसे स्वर्ण मण्डित किया और अमष्तसर के हरिमंदिर पर सोना चढ़वाकर उसे स्वर्ण मंदिर में बदल दिया।

महाराजा रणजीत सिंह का जन्म सुकरचक्या मिसल (जागीर) के मुखिया महासिंह के

घर हुआ। अभी वह 12 वर्ष के थे कि उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। 1792 से 1797 तक की जागीर की देखभाल एक प्रतिषासक परिषद ;ब्वनदबपस व ित्महमदबलद्ध ने की। इस परिषद में इनकी माता, सास और दीवाने लखपतराय शामिल थे। 1797 में रणजीत सिंह ने अपनी जागीर का समस्त कार्यभार स्वयं सँभाल लिया।

महाराजा रणजीत सिंह ने 1801 ई0 में बैसाखी के दिन लाहौर में बाबा साहब सिंह बेदी के हाथों माथे पर तिलक लगवाकर अपने आपको एक स्वतन्त्र भारतीय शासक के रूप में प्रतिष्ठित किया। चालीस वर्ष के अपने शासनकाल में महाराजा रणजीत सिंह ने इस स्वतन्त्र राज्य की सीमाओं को और विस्तृत किया। साथ ही साथ उसमे ऐसी शक्ति भरी कि किसी भी आक्रमणकारी की इस ओर आने की हिम्मत नहीं हुई। महाराजा के रूप में उनका राजतिलक तो हुआ किन्तु वे राज सिंहासन पर कभी नही बैठे। अपने दरबारियों के साथ मसनद के सहारे जमीन पर बैठना उन्हें ज्यादा पसन्द था।

इक्कीस वर्ष की उम्र में ही रणजीत सिंह 'महाराजा' की उपाधि से विभूषित हुये। कालांतर में वे 'षेर-ए- पंजाब' के नाम से विख्यात हुए।

महाराजा रणजीत सिंह एक अनूठे शासक थे। उन्होंने कभी अपने नाम से शासन नही किया। वे सदैव खालसा या पंथ खालसा के नाम से शासन करते रहे। एक कुषल शासक के रूप में रणजीत सिंह अच्छी तरह जानते थे कि जब तक उनकी सेना सुषिक्षित नहीं होगी, वह शत्रुओं का मुकाबला नहीं कर सकेगी। उस समय तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार सम्पूर्ण भारत पर हो चुका था। भारतीय सैन्य पद्धति और अस्त्र-शस्त्र यूरोपीय सैन्य व्यवस्था के सम्मुख नाकारा सिद्ध हो रहे थे।

सन् 1805 में महाराजा ने भेष बदलकर लार्ड लेक के षिविर में जाकर अंग्रेजी सेना की कवायद, गणवेष और सैन्य पद्धति को देखा और अपनी सेना को उसी पद्धति से संगठित करने का निष्चय किया। प्रारम्भ में स्वतन्त्र ढंग से लड़ने वाले सिख सैनिको को कवायद आदि का ढंग बड़ा हास्यास्पद लगा और उन्होंने उसका विरोध किया, पर रणजीत सिंह अपने निष्चय पर दृष्ढ़ रहे।

निःसंदेह रणजीत सिंह की उपलब्धियाँ महान थीं। उन्होंने पंजाब को एक आपसी लड़ने वाले संघ के रूप में प्राप्त किया तथा एक शक्तिशाली राज्य के रूप में परिवर्तित किया।

- इतिहासकार

जे0 डी0 कनिंघम

रणजीत सिंह के शासनकाल में किसी को मृत्युदण्ड नहीं दिया गया, यह तथ्य अपने आप में कम आष्चर्यजनक नहीं है। उस युग में जब शक्ति के मद में चूर शासकगण बात बात में अपने विरोधियों को मौत के घाट उतार देते थे, रणजीत सिंह ने सदैव अपने विरोधियों के प्रति उदारता और दया का दृष्टिकोण रखा। जिस किसी राज्य या नवाब का राज्य जीत कर उन्होंने अपने राज्य में मिलाया उसे जीवनयापन के लिए कोई न कोई जागीर निष्चित रूप से दे दी।

एक व्यक्ति के रूप में रणजीत सिंह अपनी उदारता एवं दयालुता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उनकी इस भावना के कारण उन्हें लाखबख्श कहा जाता था। शारीरिक दृष्टि से रणजीत सिंह उन व्यक्तियों में से नहीं थे, जिन्हें सुदर्षन नायक के रूप में याद किया जाय। उनका कद औसत दर्जे का था। रंग गहरा गेहुआँ था। बचपन में चेचक की बीमारी के कारण उनकी बांइं आँख खराब हो गई थी। चेहरे पर चेचक के गहरे दाग थे परन्तु उनका व्यक्तित्व आकर्षक था।

तत्कालीन ब्रिटिष गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक ने एक बार फकीर अजीमुद्दीन से पूछा कि महाराजा की कौन सी आँख खराब है। फकीर साहब ने उत्तर दिया- '' उनके चेहरे पर इतना तेज है कि मैंने कभी सीधे उनके चेहरे की ओर देखा ही नहीं, इसलिए मुझे यह नहीं मालूम कि उनकी कौन सी आँख खराब है।''

महाराजा रणजीत सिंह का 27 जून 1839 में लाहौर में देहावसान हो गया। उनके शासन के 40 वर्ष निरंतर युद्धों-संघर्षों के साथ ही साथ पंजाब के आर्थिक और सामाजिक विकास के वर्ष थे। रणजीत सिंह को कोई उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं हुआ, यह दुर्भाग्य की बात थी। महाराजा रणजीत सिंह की कार्यषैली में अनेक ऐसे गुण थे जिन्हें वर्तमान शासन व्यवस्था में भी आदर्ष के रूप में सम्मुख रखा जा सकता है।

पारिभाषिक शब्दावली

सेना की कवायद	-	सेना के युद्ध करने के नियम
लाखबक्ष	-	लाखों का दान देने वाला
सुदर्षन	-	जो देखने में बहुत सुन्दर हो
जनश्रुति	-	जो लोगों द्वारा सुनी जाती ह

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. महाराजा रणजीत सिंह ने मंदिरों और मस्जिदों के उत्थान के लिए क्या उल्लेखनीय कार्य किया?
2. विभिन्न धर्मों के प्रति महाराजा रणजीत सिंह के क्या विचार थे?
3. किन गुणों के कारण महाराजा रणजीत सिंह को लोक गाथाओं में स्थान मिला?

4. किसने और क्यों कहा-

(क) ईश्वर की इच्छा है कि मैं सभी धर्मों को एक नजर से देखूँ।
(ख) उनके चेहरे पर इतना तेज था कि मैंने कभी सीधे उनके चेहरे की ओर देखा ही

नहीं।

5. *सही* (√) *अथवा गलत* (x) *का निशान लगाइए-*

(*क*) *महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल में किसी को मृत्युदंड नहीं दिया गया।*
(*ख*) *इक्कीस वर्ष की उम्र में महाराजा रणजीत सिंह को शेर-ए-पंजाब की उपाधि दी गई।*
(*ग*) *अपने जीवनकाल में महाराजा रणजीत सिंह जनश्रुतियों का केंद्र बन गए।*
(*घ*) *प्रतिशासक परिषद में महाराजा रणजीत सिंह और उनकी माँ को सम्मिलित किया गया।*

6. *उचित शब्द का चयन करके रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-*

(*क*) *ईश्वर की इच्छा है कि मैं सभी धर्मों को एक ही* .... *से देखूँ।* (*आँख, विचार, नजर*)
(*ख*) *अपने जीवनकाल में ही वे जनश्रुतियों का* .... *बन गए थे।* (*विषय, कंेद्र, क्षेत्र*)
(*ग*) *महाराजा रणजीत सिंह को दरबारियों के साथ मसनद के सहारे जमीन पर* .... *अच्छा लगता था।* (*सोना, खेलना, बैठना*)
(*घ*) *महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी सैन्य पद्धति को अंग्रेजी सेना के अनुसार संगठित करने का* .... *किया।* (*विचार, निश्चय, काम*)

7. *अपने शिक्षक/शिक्षिका से चर्चा कीजिए-*

जनश्रुति और लोककथाएँ क्या हैं?

8. *स्वयं कीजिए-*

(*क*) *आपके आस-पास भी कुछ जनश्रुतियाँ और लोककथाएँ प्रचलित होंगी, उनका संकलन कीजिए।*
(*ख*) *महाराजा रणजीत सिंह के किस गुण ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया और क्यों? दस वाक्यों में लिखिए।*

पाठ - 25

मंगल पाण्डे

कोलकाता में हुगली नदी के किनारे बैरकपुर नगर में अंग्रेज सेना की बंगाल छावनी थी। सेना की वर्दी में सिपाही परेड करते रहते थे। यहीं एक बहुत शान्त और गंभीर स्वभाव के सिपाही की भर्ती हुई थी। उन्हें केवल सात रुपये महीना वेतन मिलता था। उनके एक सिपाही मित्र ने एक दिन कहा, "अरे! अधिक धन कमाना है तो अपना देष छोड़कर अंग्रेज सेना में भर्ती हो जाइए।" उस सिपाही ने उत्तर दिया-"नहीं, नहीं! मैं अधिक धन कमाने के लालच में अपना देष छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।"

जब वे बंगाल छावनी में थे तब एक दिन सिपाही ने बताया कि ऐसी चर्चा है कि बंदूक में जो कारतूस भरने के लिए दी जाती हैं उसके खोल में गाय और सुअर की चर्बी लगी है। कारतूस भरने के पहले उन्हें मुँह से खींच कर खोलना पड़ता था। यह हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों के लिए धर्म के विरुद्ध कार्य था। इस सूचना से सभी सिपाहियों के हृदय में घष्णा भर गई। उसी रात बैरकपुर की कुछ इमारतों में आग की लपटें देखी गईं। वह आग किसने लगाई थी, कुछ पता न चल सका। बन्दूक की कारतूस में गाय व सुअर की चर्बी होने की बात सैनिक छावनियों तक ही सीमित नहीं रहीं बल्कि सारे उत्तर भारत में फैल गई। सभी स्थानों में इसकी चर्चा होने लगी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीतियों को लेकर भारतीयों में असंतोष की भावना पहले से ही थी इस खबर ने आग में घी का काम किया। बैरकपुर छावनी में भारतीय सैनिकों ने संघर्ष छेड़ दिया।

देष के लिए अपने निजी स्वार्थ को त्यागने वाला देषभक्त सिपाही प्रथम स्वतन्त्रता

संग्राम के प्रथम योद्धा बने। इस सिपाही का नाम मंगल पाण्डे था।
मंगल पाण्डे का जन्म बलिया जनपद में हुआ था। वे बहुत ही साधारण परिवार के थे। वे अपने माता-पिता का बहुत आदर और सम्मान करते थे। मंगल पाण्डे जैसे शान्त व सरल स्वभाव के व्यक्ति प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के प्रथम योद्धा कैसे बने, इसके पीछे एक कहानी है।

एक दिन मंगल पाण्डे सेना का मार्च देखने के लिए कौतूहलवष सड़क के किनारे आकर खड़े हो गए। सैनिक अधिकारी ने इन्हंे हृष्टपुष्ट और स्वस्थ देखकर सेना में भर्ती हो जाने का आग्रह किया और वे राजी हो गए। वे 10 मई 1849 ई0 को 22 वर्ष की आयु में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेना में भर्ती हुए।
19 नवम्बर को बैरकपुर की पलटन को नये कारतूस प्रयोग करने के लिए दिए गए। सिपाहियों ने उन्हें प्रयोग करने से इनकार कर दिया। अंग्रेज अधिकारियों ने तुरन्त ही उस पलटन के हथियार रखवा लिए और सैनिकों को बर्खास्त कर दिया। कुछ ने तो चुपचाप हथियार अर्पित कर दिए किन्तु अधिकतर सैनिक क्रान्ति के लिए तत्पर हो उठे। 29, मार्च 1857 ई0 को परेड के मैदान में मंगल पाण्डे ने खुले रूप में अपने साथियों के समक्ष क्रान्ति का आह्वान किया।

मंगल पाण्डे के क्रांति से सम्बन्धित इस आह्वान को सुनते ही अंग्रेज सार्जेण्ट मेजर ह्यूसन ने लेफ्टिनेन्ट एड्जूडेन्ट बाग को बुलाने का आदेश दिया। लेफ्टिनेन्ट बाग घोड़े पर सवार होकर घटना स्थल पर पहुँच गया। मंगल पाण्डे ने बाग पर गोली चला दी। पाण्डे की इस गोली से बाग तो बच गया किन्तु उसका घोड़ा घायल हो गया। घोड़े के घायल होने से लेफ्टिनेन्ट बाग जमीन पर गिर गया किन्तु पलभर में ही एड्जूडेन्ट बाग तलवार निकाल कर खड़ा हो गया। इसी समय बाग की सहायता के लिए सार्जेन्ट ह्यूसन भी वहाँ पहुँच गया। मंगल पाण्डे ने भी अपनी तलवार निकाल ली। दोनो में घमासान तलवार युद्ध होने लगा। अन्त में मंगल पाण्डे की तलवार से लेफ्टिनेन्ट एड्जूडेन्ट बाग धराशायी हो गया। अंग्रेज अधिकारियों में दहषत फैल गई। अन्त में जनरल हीयरसे ने चालाकी से मंगल पाण्डे के पीछे से आकर उसकी कनपटी पर अपनी पिस्तौल तान दी। जब उन्हांेने अनुभव किया कि अंग्रेजों से बचना मुष्किल है, तब उन्होंने अंग्रेजों का कैदी बनने के बजाय स्वयं को गोली मारना बेहतर समझा और अपनी छाती पर गोली चला दी, लेकिन वे बच गए और मूच्र्छित होकर गिर पड़े। अन्त में घायलावस्था में उन्हें गिरफ्तार किया गया।

मंगल पाण्डे पर सैनिक अदालत में मुकदमा चला। 8 अप्रैल का दिन फाँसी के लिए नियत किया गया किन्तु बैरकपुर भर में कोई भी मंगल पाण्डे को फाँसी देने के लिए राजी न हुआ। अन्त में कोलकाता से चार आदमी इस काम के लिए बुलाए गए। 8 अप्रैल 1857 ई0 को अंग्रेजों ने पूरी रेजीमेण्ट के सामने मंगल पाण्डे को फाँसी दे दी। अंग्रेज लेखक चार्ल्स बॉल और लार्ड राबर्ट्स दोनों ने लिखा है कि उसी दिन से सन् 1857-58 के समस्त क्रांतिकारी सिपाहियों को 'पाण्डे' के नाम से पुकारा जाने लगा।

मंगल पाण्डे के इस बलिदान से क्रान्ति की अग्नि और भड़क उठी। उसकी लपटें सारे देष में फैल गई।
एक अंग्रेज लेखक मार्टिन ने लिखा है.........
''*मंगल पाण्डे को जब से फाँसी दे दी गयी है तब से समस्त भारत की सैनिक छावनियों में जबर्दस्त विद्रोह प्रारम्भ हो गया है।*''
बैरकपुर के अलावा मेरठ, दिल्ली, फिरोजपुर लखनऊ, बनारस, कानपुर एवं फैजाबाद आदि स्थानों पर भारतीय सैनिकों ने विद्रोह किया जो 1857 *ई0 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्रान्ति का नेतष्त्व बहादुरषाह जफर, नाना साहब, तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, राजा कुँवर सिंह, मौलवी लियाकत अली, बेगम जीनत महल और बेगम हजरत महल जैसे नेताओं ने अलग-अलग स्थानों पर किया। इस संग्राम का परिणाम यह हुआ कि भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन सदैव के लिए समाप्त हो गया।*

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *मंगल पांडे का स्वभाव कैसा था* ?
2. *भारतीय सिपाहियों में विद्रोह क्यों उत्पन्न हुआ* ?
3. *मंगल पांडे ने कौन से ऐसे कार्य किए जिससे देश में क्रांति की चिंगारी भड़क उठी* ?
4. *प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किन-किन नेताओं ने किया*?

5. *सही* (√) *अथवा गलत* (x) *कथन पर निशान लगाइए-*

(*क*) *मंगल पांडे बहुत साधारण परिवार के थे।*
(*ख*) *मंगल पांडे के जीवन का लक्ष्य अधिक से अधिक धन कमाना था।*
(*ग*) *मंगल पांडे को मेजर ह्यूसन ने गिरफ्तार किया था।*
(*घ*) *मंगल पांडे ने अंग्रेजों का कैदी बनने के स्थान पर स्वयं को गोली मारना बेहतर समझा।*

6. *सही विकल्प चुनकर सही* (ü) *का चिह्न लगाइए -*

सिपाहियों ने कारतूस प्रयोग करने से मना कर दिया-
(*क*) *क्योंकि वे हथियार नहीं उठाना चाहते थे।*
(*ख*) *क्योंकि उन्हें नए हथियार चाहिए थे।*
(*ग*) *क्योंकि कारतूस के खोल गाय और सुअर की चर्बी से बने थे।*
(*घ*) *क्योंकि उन्हें ऐसा करने के लिए मंगल पांडे ने कहा था।*

7. *नीचे लिखी घटनाओं को क्रम से लिखिए-*

(*क*) *एक रात बैरकपुर की कुछ इमारतों में आग की लपटें देखी गईं।*
(*ख*) 8 *अप्रैल सन्* 1857 *ई0 को मंगल पांडे को फाँसी दे दी गई।*
(*ग*) *अंग्रेजों ने पलटन के हथियार रखवा लिए।*
(*घ*) *मंगल पांडे कंपनी की सेना में भर्ती हो गए।*

(ङ) ***सैनिकों ने चर्बी लगे कारतूस प्रयोग करने से मना कर दिया।***

पाठ - 26

कुँवर सिंह

भारतीय समाज का अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध असंतोष चरम सीमा पर था। अंग्रेजी सेना के भारतीय जवान भी अंग्रेजों के भेद-भाव की नीति से असंतुष्ट थे। यह असंतोष 1857 *ई0 में अंग्रेजों के खिलाफ खुले विद्रोह के रूप में सामने आया। क्रूर ब्रिटिष शासन को समाप्त करने के लिए सभी वर्गों के लोगों ने संगठित रूप से कार्य किया।* 1857 *का यह सषस्त्र संग्राम स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहलाता है। नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे और बेगम हजरत महल जैसे शूरवीरों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया। बिहार में दानापुर के क्रांतिकारियों ने भी* 25 *जुलाई* 1857 *को विद्रोह कर दिया और आरा पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इन क्रांतिकारियों का नेतृत्व कर रहे थे वीर कुँवर सिंह।*

कुँवर सिंह बिहार राज्य में स्थित जगदीषपुर के जमींदार थे। उनके पूर्वज मालवा के प्रसिद्ध शासक महाराजा भोज के वंषज थे। कुँवर सिंह के पास बड़ी जागीर थी किन्तु उनकी जागीर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गलत नीतियों के कारण छिन गई थी।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय कुँवर सिंह की उम्र अस्सी वर्ष की थी। वृद्धावस्था में भी उनमें अपूर्व साहस, बल और पराक्रम था। उन्होंने देष को पराधीनता से मुक्त कराने के लिए दृष्ढ संकल्प के साथ संघर्ष किया।

अंग्रेजों की तुलना में कुँवर सिंह के पास साधन सीमित थे परन्तु वे निराष नहीं हुए। उन्होंने क्रांतिकारियों को संगठित किया। अपने साधनों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने छापामार युद्ध की नीति अपनाई और अंग्रेजों को बार-बार हराया। उन्होंने अपनी युद्ध

नीति से अंग्रेजों के जन-धन को बहुत क्षति पहुँचाई।

कुँवर सिंह ने जगदीषपुर से आगे बढ़कर गाजीपुर, बलिया, आजमगढ़ आदि जनपदो में छापामार युद्ध करके अंग्रेजों को खूब छकाया। वे युद्ध अभियान में बाँदा, रीवाँ तथा कानपुर भी गए। इसी बीच अंग्रेजों को इंग्लैण्ड से नयी सहायता प्राप्त हुई। कुछ रियासतों के शासकों ने अंग्रेजों का साथ दिया। एक साथ एक निष्चित तिथि को युद्ध आरम्भ न होने से अंग्रेजों को विद्रोह के दमन का अवसर मिल गया। अंग्रेजों ने अनेक छावनियों में सेना के भारतीय जवानों को निःषस्त्र कर विद्रोह की आषंका में तोपों से भून दिया। धीरे-धीरे लखनऊ, झाँसी, दिल्ली में भी विद्रोह का दमन कर दिया गया और वहाँ अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया।

ऐसी विषम परिस्थिति में भी कुँवर सिंह ने अदम्य शौर्य का परिचय देते हुए अंग्रेजी सेना से लोहा लिया। उन्हें अंग्रेजों की सैन्य शक्ति का ज्ञान था। वे एक बार जिस रणनीति से शत्रुओं को पराजित करते थे दूसरी बार उससे भिन्न रणनीति अपनाते थे। इससे शत्रु सेना कुँवर सिंह की रणनीति का निष्चित अनुमान नहीं लगा पाती थी।

आजमगढ़ से 25 मील दूर अतरौलिया के मैदान में अंग्रेजों से जब युद्ध जोरों पर था तभी कुँवर सिंह की सेना सोची समझी रणनीति के अनुसार पीछे हटती चली गई। अंग्रेजों ने इसे अपनी विजय समझा और खुषियाँ मनाईं। अंग्रेजों की थकी सेना आम के बगीचे में ठहरकर भोजन करने लगी। ठीक उसी समय कुँवर सिंह की सेना ने अचानक आक्रमण कर दिया। शत्रु सेना सावधान नहीं थी। अतः कुँवर सिंह की सेना ने बड़ी संख्या में उनके सैनिकों को मारा और उनके शस्त्र भी छीन लिए। अंग्रेज सैनिक जान बचाकर भाग खड़े हुए। यह कुँवर सिंह की योजनाबद्ध रणनीति का परिणाम था।

पराजय के इस समाचार से अंग्रेज बहुत चिंतित हुए। इस बार अंग्रेजों ने विचार किया कि कुँवर सिंह की फौज का अंत तक पीछा करके उसे समाप्त कर दिया जाय। पूरे दल बल के साथ अंग्रेजी सैनिकों ने पुनः कुँवर सिंह तथा उनके सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। युद्ध प्रारम्भ होने के कुछ ही समय बाद कुँवर सिंह ने अपनी रणनीति में परिवर्तन किया और उनके सैनिक कई दलों में बँटकर अलग-अलग दिषाओं में भागे। उनकी इस योजना से अंग्रेज सैनिक संषय में पड़ गए और वे भी कई दलों में बँटकर कुँवर सिंह के सैनिकों का पीछा करने लगे। जंगली क्षेत्र से परिचित न होने के कारण बहुत से अंग्रेज सैनिक भटक गये और उनमें बहुत से मारे गए।

इसी प्रकार कुँवर सिंह ने अपनी सोची समझी रणनीति में परिवर्तन कर अंग्रेज सैनिकों को कई बार छकाया।

कुँवर सिंह की इस रणनीति को अंग्रेजों ने धीरे-धीरे अपनाना शुरू कर दिया। एक बार जब कुँवर सिंह सेना के साथ बलिया के पास षिवपुरी घाट से रात्रि के समय किष्तियों में गंगा नदी पार कर रहे थे तभी अंग्रेजी सेना वहाँ पहुँची और अंधाधुंध

गोलियाँ चलाने लगी। अचानक एक गोली कुँवर सिंह की बाँह में लगी। इसके बावजूद वे अंग्रेज सैनिकों के घेरे से सुरक्षित निकलकर अपने गाँव जगदीषपुर पहुँच गए। घाव के रक्त स्राव के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया और 26 अप्रैल 1858 को इस वीर और महान देषभक्त का देहावसान हो गया।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. कुँवर सिंह कौन थे ? प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय इनकी आयु कितनी थी ?
2. अंग्रेजी सेना के भारतीय जवान अंग्रेज सरकार से क्यों नाराज थे ?
3. कुँवर सिंह ने अपनी रणनीति में क्या-क्या परिवर्तन किए ?
4. कुँवर सिंह अंग्रेजी सेना से युद्ध के समय कौन-कौन सी रणनीति अपनाते थे ?

योग्यता विस्तार-

इस पाठ का मूलभाव क्या है? अपनी शिक्षक/शिक्षिका से चर्चा कीजिए और उत्तर पुस्तिका में लिखिए।

पाठ - 27

बाबू बंधू सिंह

भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम सन् 1857 ई0 में देष के जिन सपूतों ने अपने प्राणों की आहुति देकर उस महासंग्राम को अमर बनाया, उनमें अमर षहीद बंधू सिंह का नाम प्रमुख है। बंधू सिंह पूर्वांचल के एक ऐसे नायक थे, जिन्होंने गोरखपुर जिले में अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे।
अंग्रेज उनके नाम से दहल उठते थे।
अमर षहीद बाबू बंधू सिंह का जन्म गोरखपुर जिले के ग्राम-डुमरी कोर्ट (तत्कालीन डुमरी रियासत), थाना-चैरीचैरा में 1 मई, सन् 1833 ई0 को जागीरदार बाबू षिव प्रसाद सिंह के यहाँ हुआ था। बंधू सिंह के अतिरिक्त षिव प्रसाद सिंह के पाँच और पुत्र दलहम्मन सिंह, तेजई सिंह, फतेह सिंह, झीनक सिंह और करिया सिंह थे। षिव प्रसाद सिंह 'डुमरी रियासत' के जागीरदार थे। डुमरी रियासत कभी 'सतासी' राज्य का भाग हुआ करता था। राजपरिवार से होने के कारण सभी भाइयों सहित बंधू सिंह का लालन-पालन अच्छी प्रकार से हुआ था। सभी भाई बहादुर एवं बलवान थे।

उस समय पूरा भारतीय समाज अंग्रेजों के अत्याचार व दमन से त्रस्त था। बचपन से ही बंधू सिंह के मन में अंग्रेजी दासता को समाप्त करने की इच्छा प्रज्वलित हो उठी थी। कहा जाता है कि वे नित्य देवी पूजन को जाया करते थे। एक दिन पूजा के समय उन्होंने आषीर्वाद माँगा कि "हे माँ! मुझे ऐसी षक्ति प्रदान करो जिससे मैं अपने देषवासियों को अंग्रेजी दासता की बेड़ियों से मुक्ति दिला सकूँ।" इसके बाद उन्होंने अंग्रेजों को चुन-चुन कर समाप्त करने का फैसला किया।
कुछ समय पष्चात सन् 1857 ई0 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की लौ पूरे देष में जल उठी और उस संघर्श की लौ में उन्होंने चुन-चुन कर अंग्रेजों का सफाया आरंभ कर दिया। उनके इस कार्य से अंग्रेजी षासन में भय व्याप्त हो गया था।

बाबू बंधू सिंह ने पूर्वी उत्तर प्रदेष (तत्कालीन यूनाइटेड प्रॉविन्स) के गोरखपुर जिले में क्रांति की लौ को प्रज्वलित कर जन-जन में फैला दिया। उन्होंने अपने भाइयों के साथ यहाँ की जनता में आजादी का जोष पैदा

किया। वे गोरिल्ला युद्ध के माध्यम से अंग्रेज अफसरों और सैनिकों का काम तमाम करते थे।

एक बार की घटना के संबंध में कहा जाता है कि अंग्रेजों को अपना खजाना गोरखपुर भेजना था लेकिन बंधू सिंह के कारण कोई इसका साहस नहीं जुटा पा रहा था। तब अंग्रेजों के वफादार एक अफसर ने कहा कि हम खजाना लेकर जाएँगे और बंधू सिंह व उसके भाइयों को मार-मार कर खाल उतार लंेगे। उस अफसर की चुनौती को बंधू सिंह व उनके भाइयों ने स्वीकार करते हुए रास्ते में उस पर हमला बोल दिया तथा उसे मारकर खजाना अपने अधिकार में कर लिया और उस धन को स्वाधीनता के संघर्श में लगा दिया।
सैयद अहमद अली षाह, मियाँ साहब इमामबाड़ा गोरखपुर की पुस्तक 'कषफुल बगावत' में बंध्ाू सिंह का उल्लेख है। कविता में अहमद अली षाह ने सन् 1857 *ई0 की क्रांित का विस्तृत वर्णन करते हुए अपनी संपत्ति को भी नुकसान पहुँचाने का विवरण दिया है।*

अंग्रेजी षासन के विरुद्ध बंधू सिंह व उनके साथियों का संघर्श और तेज होता देखकर अंग्रेज उन्हें पकड़ने के लिए बेचैन हो उठे। उनके खिलाफ सम्मन जारी हो गया तथा उन्हें पकड़ने के लिए अंग्रेज सैनिकों की गतिविधियाँ बढ़ गईं। ऐसे समय में बंधू सिंह ने अपने पूजा स्थल के निकट के जंगल में षरण लेकर देवी की विषेश आराधना षुरू कर दी। अंग्रेज उन्हें पकड़ने में असफल हो रहे थे। तब अंग्रेज अफसरों ने ृड्यंत्र के माध्यम से उन्हें गिरफ्तार करने की गुप्त योजना बनाई। उन्होंने मुखबिर का सहारा लिया। मुखबिर ने धोखे से बाबू बंधू सिंह को अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार करवा दिया। अंग्रेजी षासन ने मुकदमे की कार्यवाही चलाए बिना ही बंधू सिंह को बागी ठहरा कर 12 *अगस्त, सन्* 1857 *ई0 को गोरखपुर षहर के अलीनगर चैराहे के पष्चिम में खुली जगह पर सरेआम फाँसी पर लटका दिया।*

कुछ इतिहासकारों के अनुसार बंधू सिंह को अंग्रेजों ने गिरफ्तार करके वर्तमान डोमखाना मोती जेल अर्थात तत्कालीन प्रथम जेल गोरखपुर में बंदी बनाकर रखा था। उस समय घंटाघर के स्थान पर वहाँ पतजू (पुत्रजीवा) का पेड़ हुआ करता था, उस पर ही उन्हें फाँसी दी गई। उसी स्थान पर बाद में घंटाघर का निर्माण हुआ। डॉ0 सलाम संदीलवी ने अपनी पुस्तक 'तारीख-ए-अदबियत गोरखपुर' में बंधू सिंह के अन्य साथियों का भी वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि मोषर्रफ अली, फैजबख्ष, फजल अली एवं अली हसन को भी घंटाघर के चैक स्थित तत्कालीन पतजू के पेड़ पर लटकाकर खुलेआम फाँसियाँ दी गईं।

जनश्रुति है कि जिस समय बाबू बंधू सिंह को फाँसी दी जा रही थी, उस समय उनके गले से फाँसी का फंदा सात बार टूट गया। सभी अंग्रेज अफसर हैरान व परेषान थे। आठवीं बार बंधू सिंह ने देवी माँ से प्रार्थना की कि अब मुझे अपने चरणों में आने दो। इतना कहने के बाद उन्होंने स्वयं फाँसी का फंदा अपने गले में डाल लिया और भारत माँ की खातिर हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

जनश्रुतियों के अनुसार बंधू सिंह की गर्दन फाँसी के फंदे से लटकते ही उनके पूजा स्थान पर स्थित तरकुल (ताड़) के पेड़ का ऊपरी हिस्सा कट कर गिर गया और उससे रक्त जैसा स्राव निकलने लगा। कालांतर में यही स्थान 'तरकुलही देवी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ प्रतिवर्श चैत्र नवरात्र के मेले में लाखों लोग दर्षन करने एवं श्रद्धा सुमन चढ़ाने आते हैं।

बाबू बंधू सिंह की वीरगाथाएँ वहाँ के लोग गीतों, लोक नाटकों एवं बिरहा आदि के माध्यम से गाते चले आ रहे हैं, जो जनमानस को सदैव उनके बलिदान की याद दिलाते रहंेगे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. ***बाबू बंधू सिंह का जन्म कब और कहाँ हुआ था***?
2. ***अंग्रेजी शासन में बाबू बंधू सिंह के किस कार्य से भय व्याप्त हो गया था***?
3. ***अफसर की चुनौती का सामना बंधू सिंह ने कैसे किया***?
4. ***बाबू बंधू सिंह के फाँसी के फंदे के संबंध में कौन सी जनश्रुति प्रसिद्ध है***?

बेगम हजरत महल

देष के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम 1857 ई0 की क्रान्ति की चिंगारियाँ जगह-जगह फूट रहीं थीं। देष के हर कोने में इसकी लपट महसूस की जा रही थी।उत्तर प्रदेष के अवध क्षेत्र के लोगों में भी आजादी की ललक थी। जगह-जगह विद्रोह शुरू हो गए थे। बेगम हजरत महल लखनऊ के विभिन्न क्षेत्रों में घूम-घूम कर लगातार क्रान्तिकारियों और अपने सैनिकों का उत्साहवर्धन करती रहीं।बेगम ने लखनऊ और आस पास के सामन्तों को संगठित किया और अंग्रेजों से डटकर लोहा लिया। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में बेगम हजरत महल का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। वस्तुतः अवध की क्रान्ति की यह गाथा उनकी अपनी गाथा बन गई है।

सन् 1801 ई0 में अवध के तत्कालीन नवाब सआदत अली खाँ ने लार्ड वेलेजली द्वारा आरम्भ की गई सहायक संधि पर हस्ताक्षर कर स्वयं को पंगु बना लिया था। परोक्ष रूप से अवध पर अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्थापित हो गई थी। 1847 ई0 में वाजिद अली शाह अवध की गद्दी पर बैठे।बेगम हजरत महल वाजिद अली शाह की पत्नी थी। वाजिद अली शाह ने गद्दी सँभालते ही सामाजिक और सैनिक सुद्दार लागू करना शुरू कर दिया। यह बात अंग्रेजों को खटक रही थी कि नवाब वाजिद अली शाह साम्राज्य के प्रषासन में उनका हस्तक्षेप पसन्द नहीं कर रहें हैं। नवाब पर कुषासन और अकर्मण्यता का आरोप लगाकर डलहौजी ने 1856 ई0 में नवाब को कोलकाता भेजकर वहाँ नजरबंद कर दिया और अवध साम्राज्य को अपने अधीन कर लिया। अवध के लोगों की नवाब के प्रति गहरी निष्ठा थी लेकिन कुषल नेतृत्व के अभाव में वे तमाषाई बनकर रह गए।

इसी समय सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों के अन्याय, दमन और शोषण की नीति के विरुद्ध

प्रतिषोध बढ़ रहा था। मेरठ, दिल्ली, अलीगढ़, मैंनपुरी, एटा, बरेली आदि स्थानों पर स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ हो चुका था। लखनऊ के विद्रोह की शुरुआत 30 *मई* 1857 *ई*0 *को मानी जाती है। लखनऊ में विद्रोह प्रारम्भ होनें के साथ ही अवध के अन्तर्गत आने वाले तमाम क्षेत्रों जैसे सीतापुर, मुहम्मदी, सिकरौरा, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, सुल्तानपुर, सलोन और बेगमगंज को अंग्रेजों की अधीनता से मुक्त करा लिया गया। केवल राजधानी लखनऊ पर ही अंग्रेजों का कब्जा था।* 30 *जून को चिनहट में अंग्रेज बुरी तरह से पराजित हुए और सभी अंग्रेजों ने लखनऊ की रेजीडेंसी में शरण ली।*
इसी बीच नवाब वाजिद अली शाह के उत्तराधिकारी के रूप में बेगम हजरत महल के अवयस्क पुत्र बिरजीस कद्र को अवध का नवाब घोषित किया गया। बेगम हजरत महल उनकी संरक्षिका बनीं।
राजकाज के निर्णय में भी बेगम के महत्व को स्वीकार किया गया। बड़े-बड़े ओहदों पर योग्य अधिकारी नियुक्त किए गए। सीमित संसाधनों और विषम परिस्थितियों के बावजूद बेगम हजरत महल लोगों में उत्साह भरती रहीं। उन्होंने विभिन्न इलाकों के उच्चाधिकारियों और सामन्तों को संगठित किया। बेगम ने स्त्रियों का एक सैनिक संगठन बनाया और कुछ कुषल स्त्रियों को जासूसी के काम में भी लगाया। महिला सैनिकों ने महल की रक्षा के लिए अपने प्राण अर्पित कर दिए।
अंग्रेज सैनिक लगातार रेजीडेंसी से अपने साथियों को मुक्त कराने के लिए प्रयासरत रहे, लेकिन भारी विरोध के कारण अंग्रेजों को लखनऊ सेना भेजना कठिन हो गया था। इधर रेजीडेंसी पर विद्रोहियों द्वारा बराबर हमले किये जा रहे थे। बेगम हजरत महल लखनऊ के विभिन्न क्षेत्रों में घूम-घूम कर लोगों का उत्साह बढ़ा रहीं थीं।
लेकिन होनी को कौन टाल सकता है। दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो चुका था। मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के बन्दी होते ही क्रान्तिकारी विद्रोहियों के हौसले कमजोर पड़ने लगे। लखनऊ भी धीरे-धीरे अंग्रेजों के नियंत्रण में आने लगा था। हैवलाक और आउट्रम की सेनाएँ लखनऊ पहुँच गईं। बेगम हजरत महल ने कैसरबाग के दरवाजे पर ताले लटकवा दिए। अंग्रेजी सेनाओं ने बेलीगारद पर अधिकार कर लिया। बेगम ने अपने सिपाहियों में जोष भरते हुए कहा- ''अब सब कुछ बलिदान करने का समय आ गया है।''
अंग्रेजों की सेना का अफसर हैवलाक आलमबाग तक पहुँच चुका था। कैम्पबेल भी कुछ और सेनाओं के साथ उससे जा मिला। आलमबाग में बहुत भीड़ इकट्ठी थी। जनता के साथ महल के सैनिक, नगर की सुरक्षा के लिए उमड़ पड़े थे। घनघोर बारिष हो रही थी। दोनों ओर से तोपों की भीषण बौछार हो रही थी। बेगम हजरत महल को चैन नहीं था। वे चारों ओर घूम-घूमकर सरदारों में जोष भर रहीं थीं। उनकी प्रेरणा ने क्रान्तिकारी विद्रोहियों में अद्भुत उत्साह का संचार किया। वे भूख प्यास सबकुछ भूलकर अपनी एक-एक इंच भूमि के लिए मर-मिटने को तैयार थे।
अन्ततः अंग्रेजों ने रेजीडेंसी में बन्द अंग्रेज परिवारों को मुक्त कराने में सफलता प्राप्त कर ली। मार्च 1858 *ई*0 *में अंग्रेजों का लखनऊ पर अधिकार हो गया।*
लखनऊ पर अधिकार के पष्चात् बेगम हजरत महल अपने पुत्र बिरजीस कद्र के साथ नेपाल चली गईं। नेपाल के राजा राणा जंगबहादुर ने प्रारम्भ में बेगम हजरत महल

को शरण देने में असमर्थता व्यक्त की लेकिन बेगम के स्वाभिमान से प्रभावित होकर राणा ने उन्हें नेपाल में रहने की जगह दिलाई। वे काठमाण्डू में साधारण जीवन यापन करने लगीं। उन्होंने अंग्रेजों के मान-सम्मान और पेंषन देने के प्रस्ताव को ठुकराते हुए नेपाल में ही रहने में अपना गौरव समझा।

बेगम हजरत महल का व्यक्तित्व भारत के नारी समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वे अत्यधिक सुन्दर,दयालु और निर्भीक महिला थीं। अवध की सम्पूर्ण प्रजा, अधिकारी तथा सैनिक उनका आदर करते थे।

क्रान्तिकारियों के सरदार दलपत सिंह महल में पहुँचते ही बोले-श्"बेगम हुजूर, आपसे एक इल्तजा करने आया हूँ।" वह क्या?"- बेगम ने पूछा, "आप अपने कैदी फिरंगियों को मुझे सौंप दीजिए। मैं उसमें से एक-एक का हाथ पैर काटकर अंग्रेजांे की छावनी में भेजूँगा।" बात पूरी करते-करते दलपत सिंह का चेहरा भयंकर हो उठा।

श्"नहीं, हरगिज नहीं।" बेगम के लहजे में कठोरता आ गई- हम कैदियों के साथ ऐसा सलूक न तो खुद कर सकते हैं और न किसी को इसकी इजाजत दे सकते हैं। कैदियो पर जुल्म ढाने का रिवाज़ हमारे हिन्दुस्तान में नहीं है। हमारे जीते जी फिरंगी कैदियो एवं उनकी औरतों पर जुल्म कभी नहीं होगा।"

सन् 1874 ई0 में भारतीय क्रान्ति की यह कान्तिमयी तारिका इस जगत से विदा हो गई। बेगम ने जिन विपत्तियों और विषम परिस्थितियों में साहस, धैर्य और आत्म सम्मान के साथ अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया वह हमारे लिए सदैव प्रेरणा बना रहेगा। वे आज भले ही हमारे बीच न हांे पर उनका यह संदेष हम भारतवासियों के लिए आज भी प्रासंगिक है- "यह हिन्द की पाक पवित्र सरजमीं है। यहाँ जब भी कोई जंग छिड़ी है, हमेषा जुल्म करने वाले जालिम की ही षिकस्त (हार) हुई है। यह मेरा पुख्ता (पक्का) यकीन है। बेकसों, मजलूमों का खून बहाने वाला यहाँ कभी अपने गंदे ख्वाबों के महल नहीं खड़ा कर सकेगा। आने वाला वक्त भी मेरे इस यकीन की ताईद (पुष्टि) करेगा।"

पारिभाषिक शब्दावली

सहायक संधि- अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए सहायक संधि की जिसमें कुछ निर्धारित शर्तें होती थी।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. लार्ड डलहौजी ने नवाब वाजिद अलीशाह को क्यों कैद किया?
2. अवध साम्राज्य के अंतर्गत कौन-कौन से क्षेत्र थे?
3. नेपाल के राजा ने बेगम हजरत महल को शरण देने में पहले असमर्थता क्यो जताई?
4. 1857 के संग्राम में बेगम हजरत महल द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों की सूची बनाइए।
5. सही (√) और (x) का चिह्न लगाइए-

(क) वाजिद अली शाह 1847 ई0 में अवध की गद्दी पर बैठे।
(ख) बेगम हजरत महल ने साम्राज्यवादी सहायक संधि पर हस्ताक्षर कर दिया था।
(ग) बेगम हजरत महल नवाब वाजिद अलीशाह की पत्नी थीं।
(घ) बेगम हजरत महल ने अंग्रेजों के मान-सम्मान और पेंशन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

6. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(क) अवध साम्राज्य को .... ने सन् 1856 ई0 में अंग्रेज शासन के अधीन कर लिया। (लार्ड वेलेजली, डलहौजी, हैवलॉक)
(ख) लार्ड वेलेजली ने .... से साम्राज्यवादी सहायक संधि पर हस्ताक्षर करा लिया। (सआदत अली, वाजिद अली शाह, बेगम हजरत महल)
(ग) लखनऊ पर अंग्रेजों के अधिकार के पश्चात् बेगम हजरत महल अपने पुत्र के साथ ....चली गईं। (कोलकाता, दिल्ली, नेपाल)
(घ) चिनहट युद्ध में हारने के बाद सभी अंग्रेजों ने लखनऊ के .... में शरण ली। (रेजीडेंसी, आलमबाग, शाही महल)

पाठ - 29

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

''बंगाल में लड़कियों को स्कूल ले जाने वाली गाड़ियों, पालकियों तथा षिक्षण संस्थाओं की दीवारों पर मनु-स्मष्ति का एक श्लोक लिखा रहता था। जिसका अर्थ था- ''बालिकाओं को बालकों के समान षिक्षा पाने का पूरा अधिकार है।''

ईश्वर चंद्र विद्यासागर का जन्म वीर सिंह नामक गाँव में हुआ था। इनकी माता बहुत अच्छे विचारों की थीं। सभी का सम्मान करना और अपना काम स्वयं करना, यह शिक्षा उन्हें अपनी माता से मिली थी। ईश्वर चंद्र विद्यासागर की प्रारंभिक शिक्षा गाँव के ही विद्यालय में हुई थी। उच्च शिक्षा के लिए वे कलकत्ता (कोलकाता) के संस्कृत विद्यालय में गए। संस्कृत की शिक्षा के साथ-साथ वे अंग्रेजी की शिक्षा भी प्राप्त करते रहे। सन् 1839 ई0 में लॉ कमेटी की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर उन्हें विद्यासागर की उपाधि मिली।

इसके अलावा न्यायदर्शन की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर 100 रुपये तथा संस्कृत काव्य रचना पर 100 रुपये का नकद पुरस्कार दिया गया। ईश्वर चंद्र विद्यासागर का हस्तलेख बहुत अच्छा था, इसलिए उन्हें मासिक छात्रवृत्ति भी मिलती थी। गुरुदेव रवींद्र नाथ ठाकुर ने ईश्वर चंद्र विद्यासागर को आधुनिक बंगाल काव्य का जनक माना है।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर स्कूलों के सहायक निरीक्षक के पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने शिक्षा की बहुत सी कमियों में सुधार किया। उन्होंने बंगाल के सभी जिलों में 20 ऐसे आदर्श विद्यालय खोले जिसमें विशुद्ध भारतीय शिक्षा दी जाती थी।

उन दिनों संस्कृत कॉलेज में केवल उच्च जाति के लोगों को ही प्रवेश दिया जाता था। ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने इसका कड़ा विरोध किया। उनका कहना था कि हर जाति के, हर व्यक्ति को हर प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। बंगाल मे

बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन देने का महत्त्वपूर्ण कार्य ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने किया। इन्होंने अपने समय में अनेक क्षेत्रों में सुधार किए- शैक्षिक सुधार, सामाजिक सुधार और महिलाओं की स्थिति में सुधार।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर जानते थे कि बालिकाओं की शिक्षा से ही समाज में फैली रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और कुरीतियाँ दूर की जा सकती हैं।

देश को समृद्ध एवं योग्य नागरिक प्रदान करने के लिए बालिकाओं की शिक्षा जरूरी है। उन्होंने बंगाल में ऐसे 35 स्कूल खोले जिसमें बालिकाओं की शिक्षा का प्रबंध था। वे बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए मेहनती और मेधावी छात्राओं को पुरस्कार भी दिया करते थे। उन्होंने कलकत्ता (कोलकाता) विश्वविद्यालय से सबसे पहले एम0 ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण करने वाली चंद्रमुखी बोस को पुरस्कार दिया था।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर ब्रह्म समाज नामक संस्था के सदस्य थे। स्त्री शिक्षा के साथ-साथ उन्होंने विधवा विवाह और विधवाओं की दशा सुधारने का भी काम किया। इसके लिए ईश्वर चंद्र विद्यासागर को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

अंत में विधवा विवाह को कानूनी स्वीकृति प्राप्त हो गई। सुधारवादी विचारधाराओं का जनता के बीच प्रचार करने के लिए ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने अंग्रेजी तथा बंगला में पत्र निकाले।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर का कहना था कि कोई भी व्यक्ति अच्छे कपड़े पहनने, अच्छे मकान में रहने तथा अच्छा खाना खाने से बड़ा नहीं होता, बल्कि अच्छे काम करने से बड़ा होता है।

एक बार ईश्वर चंद्र विद्यासागर गाड़ी में कलकत्ता (कोलकाता) से बर्दवान आ रहे थे। उसी गाड़ी में एक नवयुवक बहुत अच्छे कपड़े पहने बैठा था उसे भी बर्दवान आना था। स्टेशन पर गाड़ी पहुँची, नवयुवक ने अपना सामान ले चलने के लिए कुली को पुकारा। स्टेशन पर उस समय कोई कुली नहीं था। ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने उससे कहा कि यहाँ कोई कुली नहीं ह,ै आप परेशान न हों, आपका सामान मैं लिए चलता हूँ। नवयुवक खुश हो गया। उसने कहा कि मैं तुमको पूरी मजदूरी दूँगा। घर पहुँचकर वह नवयुवक ईश्वर चंद्र विद्यासागर को पैसे देने लगा तो उन्होंने पैसे नहीं लिए।

अगले दिन बर्दवान में ईश्वर चंद्र विद्यासागर के स्वागत के लिए बहुत से लोग एकत्र हुए। वह नवयुवक भी वहाँ आया। उसने देखा कि यह तो वही व्यक्ति है, जो कल मेरा सामान लेकर आया था। नवयुवक को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह लज्जित भी हुआ। जब सभा समाप्त हुई तब वह ईश्वर चंद्र विद्यासागर के घर गया और पैरांे पर गिरकर क्षमा माँगी। ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने समझाया कि अपना काम स्वयं करना चाहिए।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर उन्नीसवीं शताब्दी की महान विभूति थे। उन्होंने अपने समय में फैली अशिक्षा और रूढ़िवादिता को दूर करने का संकल्प लिया। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी उन्होंने शैक्षिक, सामाजिक और महिलाओं की स्थिति में जो सुधार किए उसके लिए हमारे देशवासी सदैव उन्हें याद करेंगे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. ***ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने बालिकाओं की शिक्षा को जरूरी क्यों बताया***?
2. ***ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने अपने समय में कौन-कौन से सुधार किए***?
3. ***व्यक्ति के बड़प्पन के विषय में ईश्वर चंद्र के क्या विचार थे***?
4. ***यदि आप किसी व्यक्ति या महिला के कार्यों से खुश हुए तो उनके बारे में लिखें और कक्षा में सुनाएँ***।

पाठ - 30

महात्मा गांधी

आँखों में गोल काँच का चष्मा, कमर में धोती लपेटे, खुला नंगा बदन, एक हाथ में गीता और दूसरे में लाठी लिये दुबली पतली काया। यह हुलिया है भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँद्दी का। महात्मा गांधी को लोग प्यार से "बापू" कहते हैं। भारतीय स्वतंत्रता में योगदान के कारण महात्मा गांधी "राष्ट्रपिता" कहे जाते हैं। महात्मा गांधी का जीवन हमारे लिये प्रेरणा स्रोत है। उन्होंने जिस कार्य व्यवहार की दूसरों से अपेक्षा की वह स्वयं पहले उसे करते थे। महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को गांधीवाद व उनके राजनीतिक काल को गांधी युग के नाम से जाना जाता है। उनका भारतीय जनमानस पर कितना गहरा प्रभाव था, इसकी झलक कवि सोहन लाल द्विवेदी की कविता में मिलती है-

चल पड़े जिधर दो डग-मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गए कोटि दृष्गा उसी ओर।
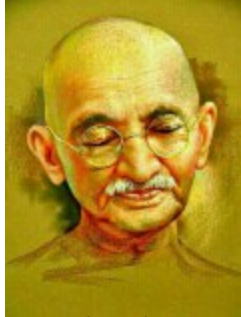
महात्मा गांधी का जन्म गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर में 2 अक्टबर 1869 ई0 को हुआ था। इनका पूरा नाम मोहनदास करमचंद गांधी था। इनके पिता का नाम करमचंद और माता का नाम पुतली बाई था। बालक मोहन पर परिवार की धार्मिक आस्था व सादगी का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्हांेने बचपन में सत्यवादी राजा हरिष्चन्द्र और श्रवण कुमार के नाटक देखे थे। इन नाटकों का सन्देष उनके सम्पूर्ण जीवन (कार्य-व्यवहार) में परिलक्षित होता है। सत्यनिष्ठा, अहिंसा, त्याग व मानव सेवा की झलक उनके जीवन के अनेक प्रसंगों में मिलती है।

गांधी अल्फ्रेड हाईस्कूल में प्रारंभिक षिक्षा ग्रहण कर रहे थे। एक बार उनके विद्यालय में निरीक्षण के लिए विद्यालय निरीक्षक आए हुए थे। उनके षिक्षक ने छात्रों को हिदायत दे रखी थी कि निरीक्षक पर आप सब का अच्छा प्रभाव पड़ना चाहिए। निरीक्षक ने छात्रों को पाँच शब्द बताकर उनके हिज्जे (वर्तनी) लिखने को कहा। बच्चे हिज्जे लिख ही रहे थे कि षिक्षक ने देखा गांधी ने एक शब्द के हिज्जे गलत लिखे हैं। उन्होंने गांधी को संकेत कर बगल वाले छात्र से नकल कर हिज्जे ठीक कर लिखने को कहा, परन्तु गांधी ने ऐसा नहीं किया। उन्हें नकल करना अपराध लगा। बाद में उन्हें षिक्षक की डाँट खानी पड़ी। उन्हीं दिनों की एक दूसरी घटना है। गांधी के बड़े भाई कर्ज में फँस गए थे। कर्ज चुकाने के लिए उन्होंने अपना सोने का कड़ा बेंच दिया। मार-खाने के डर से उन्होंने माता-पिता से झूठ बोला कि कड़ा कहीं गिर गया है। झूठ बोलने के कारण उनका मन स्थिर नहीं हो पा रहा था। रात भर उन्हें नींद नहीं आई। गांधी ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कागज में लिखकर पिता को दिया। उन्होंने सोचा कि जब पिता जी को मेरे अपराध की जानकारी होगी तो वह उन्हें पीटेंगे, लेकिन पिता ने ऐसा कुछ नहीं किया। वह बैठ गए और उनके आँसू आ गए। गांधी को इससे चोट लगी। उन्होंने महसूस किया कि प्यार हिंसा से ज्यादा असरदार दण्ड दे सकता है।

इसी घटना से प्रभावित होकर उन्होंने अहिंसा व्रत के पालन का संकल्प लिया। विलायत से वकालत करने के बाद एक बार उनको दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ पर रेल का प्रथम श्रेणी का टिकट होने के बावजूद उन्हें पहले दर्जे के कम्पार्टमेण्ट से धक्के मारकर निकाल दिया गया। उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में रंग-भेद नीति का बोलबाला था। गोरे लोग काले अफ्रीकियों और एषियाई मूल के नागरिकों से बुरा बर्ताव करते थे। गांधी जी सोचते (चिन्तन) रहे और निर्णय लिया कि मैं रंग-भेद नीति के विरुद्ध लड़ूँगा। उनका कहना था कि वे हमें तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं, इन अपमानों के आगे झुकना घोर पतन है। उन्होंने भारत में फैली छुआ-छूत की कुरीति का भी जमकर विरोध किया। स्वतन्त्रता आंदोलन में सक्रियता के साथ ही साथ उन्होंने सामाजिक कार्यों तथा कुरीतियों के विरुद्ध लड़ाई जारी रखी। गांधी जी का कहना था- 'यदि कोई निष्चित रूप से यह प्रमाणित कर देता है कि अस्पृष्यता (छुआ-छूत) हिन्दू धर्म का अंग है तो मैं यह धर्म छोड़ दूँगा'। महात्मा गांधी ने साबरमती में आश्रम के लिए नियम बनाए जिसमें सत्य बोलना, अहिंसा का भाव, ब्रह्मचर्य व्रत, भोजन संयम, चोरी न करना और स्वदेषी वस्तुओं का प्रयोग करना सभी आश्रमवासियों को समान रूप से मानने पड़ते थे। चरखे की शुरुआत भी गांधी जी ने यहीं से की थी।

गांधी जी के आचार विचार से अनेक अंग्रेज अधिकारी भी प्रभावित थे। गांधी जी पर जब मुकदमा चलाया जा रहा था तो अंग्रेज न्यायाधीष ब्रूम्स फील्ड ने कहा था- 'मिस्टर गांधी आपने अपना अपराध स्वीकार करके मेरा काम आसान कर दिया है, लेकिन क्या दण्ड उचित होगा, इसका निर्णय ही सभी न्यायाधीषों के लिए कठिन होता है।' जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' पुस्तक में गांधी जी के लिए लिखा है-

‘इस पतले-दुबले आदमी में इस्पात की सी मजबूती हैं, कुछ चट्टान जैसी दृष्ढ़ता है, जो शारीरिक ताकतों के सामने नहीं झुकती, फिर चाहे ये ताकतें कितनी ही बड़ी क्यों न हों।’

30 जनवरी 1948 ई0 को गांधी जी दिल्ली के बिड़ला मंदिर में प्रार्थना के लिए जा रहे थे, उसी समय नाथूराम गोडसे ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। दिल्ली के राजघाट में उनकी
समाधि स्थित है। उनके समाधि स्थल पर श्रद्धा के पुष्प चढ़ाने बड़ी संख्या में लोग आज भी जाते हैं। गाँधी जी के कार्य, व्यवहार व विचार हमें चिरकाल तक नैतिक बल प्रदान करते रहेंगे।

महादेवी वर्मा ने बापू को श्रद्धंाजलि देते हुए लिखा है-

चीर कर भू-व्योम की प्राचीर हो तम की षिलाएँ
अग्नि-षर सी ध्वंष की लहरें गला दंे पथ दिषाएँ
पग रहे, सीमा रहे, स्वर रागिनी सूने निलय की
शपथ धरती की तुझे ओं आन है मानव-हृदय की
यह विराग हुआ, अमर-अनुराग का परिणाम
हे असि-धार पथिक! प्रणाम!

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

1. महात्मा गांधी का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. विद्यालय निरीक्षक द्वारा शब्दों की शुद्ध वर्तनी (हिज्जे) लिखने के लिए देने पर क्या घटना हुई ?
3. दक्षिण अफ्रीका की किस घटना ने गांधी जी को रंग-भेद नीति के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित किया?
4. महात्मा गांधी ने कैसे महसूस किया कि प्यार, हिंसा से ज्यादा असरदार दंड दे सकता है ?
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) महात्मा गांधी को लोग प्यार से .... कहते हैं।
(ख) इस पतले दुबले से आदमी में .... मजबूती है और चट्टान जैसी .... है।
(ग) दक्षिण अफ्रीका में .... नीति का बोलबाला था।
(घ) गांधी जी की हत्या .... ने की थी।

प्रोजेक्ट वर्क -

गांधी जी की विभिन्न मुद्राओं के चित्रों को एकत्र कर एलबम बनाइए।।

पाठ - 31

सुभाषचंद्र बोस

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में ऐसे अनेक महापुरुषों का अविस्मरणीय योगदान रहा है जिन्होंने मातृभूमि को स्वतंत्र कराने हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। ऐसे ही एक विलक्षण महान पुरुष सुभाषचंद्र बोस थे, जो भारत की स्वतंत्रता के लिए जन्मे, जीवित रहे और अंतिम साँस तक संघर्षरत रहे। उन्होंने मातृभूमि से दूर रहकर विदेश में अपने दृढ़ संकल्प, अदम्य साहस, असीम त्याग और अद्भुत शौर्य द्वारा एक विशाल संगठन बनाकर विश्व में कर्म साधना का एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

सुभाषचंद्र बोस का जन्म 23 जनवरी, सन् 1897 ई0 में उड़ीसा के कटक में हुआ। इनके पिता का नाम जानकी नाथ बोस एवं माता का नाम प्रभावती देवी था। कटक से प्राइमरी शिक्षा पूर्ण कर सन् 1909 ई0 में उन्होंने रेवेनशा कॉलेजिऐट स्कूल में दाखिला लिया। कॉलेज के प्रिंसिपल बेनीमाधव दास के व्यक्तित्व का सुभाष के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मात्र 15 वर्ष की आयु में इन्होंने विवेकानंद साहित्य का पूर्ण अध्ययन कर लिया था। बी0ए0 (आनर्स) की परीक्षा सन् 1919 ई0 में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनका दूसरा स्थान था। पिता की इच्छा थी कि सुभाष आई.सी.एस. बनें। पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिए वे इंग्लैंड चले गये तथा सन् 1920 ई0 में आई.सी.एस. (भारतीय सिविल सेवा) परीक्षा उत्तीर्ण करते हुए वरीयता सूची में चैथा स्थान प्राप्त किया परंतु नौकरी छोड़कर उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन भारतीय स्वतत्रंता संग्राम को समर्पित कर दिया।

गांधी जी और सुभाषचंद्र के बीच पहली मुलाकात 20 *जुलाई, सन्* 1921 *ई*0 *को हुई। इन दिनों गांध्ी जी ने अंग्रेज सरकार के खिलाफ असहयोग आंदोलन चला रखा था। महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में उनकी निष्ठा नहीं थी तथापि उन्होंने उसमें सहयोग किया और जेल गए। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रति उनका अभिमत था कि शक्तिशाली की आवाज में ही वास्तविक दम होता है। उनका चिंतन था कि अतिशय अहिंसा देश के पराभव के लिए उत्तरदायी है। उनका विचार था कि ब्रिटिश सत्ता के सामने विनम्रता और गिड़गिड़ाने के बजाय बुलंद आवाज में अपना पक्ष रखा जाए। सन्* 1928 *ई*0 *में जब साइमन कमीशन भारत आया तब कांग्रेस ने उसे काले झंडे दिखाए। कलकत्ता (कोलकाता) में सुभाषचंद्र बोस ने इस आंदोलन का कुशल नेतृत्व किया।*

सुभाषचंद्र बोस की क्रांतिकारी गतिविधियों से आतंकित अंग्रेजी सरकार ने सन् 1925 *ई*0 *में उन्हें गिरफ्तार कर म्यांमार के मांडले जेल भेज दिया। सन्* 1930 *ई*0 *में जेल में रहते हुए ही वह कलकत्ता के महापौर चुने गए, इसलिए सरकार उन्हें रिहा करने पर मजबूर हो गई। सन्* 1932 *ई*0 *में उन्हें फिर कारावास में डाल दिया गया। बीमारी के कारण सरकार ने इलाज हेतु उन्हें यूरोप जाने की अनुमति दे दी। भारत लौटने पर सन्* 1938 *ई*0 *में उन्हें हरिपुरा कांग्रेस का सभापति निर्वाचित किया गया। सुभाष जी के क्रांतिकारी विचारों के कारण अपने ही दल के नेताओं से उनका तीव्र मतभेद रहा। तीव्र अंतर्विरोधों के बावजूद सन्* 1939 *ई*0 *में उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव में पट्टाभि सीतारमैया को पराजित किया।*

उन्होंने अध्यक्ष पद से त्याग पत्र देकर 3 *मई, सन्* 1939 *ई*0 *को 'फॉरवर्ड ब्लॉक' नामक दल का गठन किया। शीघ्र ही बहुत से नवयुवक उनके दल में सम्मिलित हो गए। सुभाष और उनके संगठन फॉरवर्ड ब्लॉक ने स्वाधीनता आंदोलन को और अधिक तीव्र करने के लिए जन-जागरण का अभियान प्रारंभ कर दिया। उनकी यूथ ब्रिग्रेड ने कलकत्ता स्थित 'हालवेट स्तंभ' को रातोंरात मिट्टी में मिला दिया। इसके फलस्वरूप अंग्रेज सरकार ने सुभाष सहित फॉरवर्ड ब्लॉक के प्रमुख नेताओं को बंदी बना लिया। बंदी रहते हुए उन्होंने सरकार को चेतावनी देते हुए पत्र लिखा-"मुझे मुक्त कर दीजिए अन्यथा मैं जीवित रहने से इंकार कर दूँगा। इस बात का निश्चय करना मेरे वश में है कि मैं जीवित रहूँ या मर जाऊँ। शहीदों का खून धर्म का बीज होता है। मुझे आज अवश्य मर जाना चाहिए जिससे भारत स्वतंत्र और प्रतापी हो। अपने देशवासियों को मुझे यही कहना है-भूलना मत कि दासता मनुष्य के लिए सबसे पहला पाप है।" इस पत्र का सरकार पर गंभीर प्रभाव पड़ा। उनके आमरण अनशन के कारण सरकार को उन्हें रिहा करना पड़ा।*

इस समय द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। अतः सरकार नहीं चाहती थी कि युद्ध के दौरान सुभाष मुक्त रहें। अतः उन्हें नजरबंद कर दिया गया। जनवरी, सन् 1941 *ई*0 *में पुलिस को चकमा देते हुए वह वेश बदलकर गायब हो गए और जर्मनी पहँुच गए। दिसम्बर सन्* 1941 *ई*0 *में जापान ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध्ा की घोषणा कर दी।* 4 *जुलाई, सन्* 1943 *ई*0 *को सुभाषचंद्र बोस ने 'आजाद हिंद फौज' की कमान संभाली। आजाद हिंद फौज के सिपाही उन्हें 'नेता जी' कहते थे।*

'जय हिंद', 'दिल्ली चलो', 'लाल किला हमारा है', 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा' आदि उनके जीवंत नारे थे। 21 *अक्टूबर, सन्* 1943 *ई*0 *को आजाद हिंद फौज के सर्वोच्च सेनापति की हैसियत से उन्होंने सिंगापुर में भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना की। इस सरकार को कुल नौ देशों ने मान्यता दी। उन्होंने आजाद हिंद फौज का मुख्यालय सिंगापुर एवं रंगून में बनाया। उन्होंने रानी झाँसी रेजीमेन्ट के नाम से स्त्री सैनिकों का भी एक दल बनाया।*

जुलाई सन् 1944 *ई*0 *में सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिंद रेडियो पर बोलते हुए गांधी जी को राष्ट्रपिता*

संबोध्ित करते हुए कहा कि- "भारत की स्वाधीनता का आखिरी युद्ध शुरू हो चुका है। राष्ट्रपिता भारत की मुक्ति के इस पवित्र युद्ध में हम आपका आशीर्वाद और शुभकामनाएँ चाहते हैं।" जापानी सेना के सहयोग से आजाद हिंद फौज ने अंडमान और निकोबार द्वीप पर विजय प्राप्त कर अंडमान का नाम 'शहीद द्वीप' और निकोबार का नाम 'स्वराज्य द्वीप' रखा। इसी क्रम में दोनों फौजों ने मिलकर इंफाल और कोहिमा पर आक्रमण किया। इन क्षेत्रों पर जीत प्राप्त कर सुभाषचंद्र बोस ने 22 *सितंबर, सन्* 1944 *ई0 को शहीदी दिवस मनाया, परंतु जापान की पराजय के साथ ही युद्ध का पासा पलटा, अंग्रेजों का पलड़ा भारी पड़ा और नेता जी को पीछे हटना पड़ा। माना जाता है कि* 18 *अगस्त, सन्* 1945 *ई0 को हवाई जहाज से मन्चूरिया की तरफ जाते हुए वह लापता हो गए।* 23 *अगस्त, सन्* 1945 *ई0 को टोकियो रेडियो ने बताया कि ताइहोकू हवाई अड्डे के पास उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया जिसमें वे बुरी तरह घायल हो गए और ताइहोकू सैनिक अस्पताल में उन्होंने दम तोड़ दिया।* 18 *अगस्त, सन्* 1945 *ई0 की यह घटना आज भी भारतीय इतिहास का अनुत्तरित रहस्य है।*

नेता जी सुभाषचंद्र बोस लेखक, सैनिक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, कुशल प्रशासक, सेनानायक, वक्ता व भविष्य दृष्टा के रूप में बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। वह स्वभाव से आध्यात्मिक संत थे। देश की आजादी के लिए उन्होंने संघर्ष का रास्ता चुना परंतु उनकी वृत्ति अंततः आध्यात्मिक ही थी।

भारतमाता का यह वीर सपूत अपने अटूट मातृभूमि प्रेम के कारण इतिहास में अपना नाम सदा के लिए अमर कर गया।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *सुभाषचंद्र बोस ने सिविल सेवा से त्यागपत्र क्यों दिया* ?

2. *भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रति सुभाषचंद्र बोस का क्या विचार था* ?

3. *सुभाष सहित 'फॉरवर्ड ब्लॉक' के प्रमुख नेताओं को किस कारण बंदी बना लिया गया* ?

4. *बंदी रहते हुए नेताजी ने ब्रिटिश सरकार को भेजे गए चेतावनी पत्र में क्या लिखा था* ?

5. *सुभाषचंद्र बोस द्वारा दिए गए प्रसिद्ध नारों को लिखिए।*

पाठ - 32

लाल बहादुर शास्त्री

"हम रहें या न रहें, लेकिन यह झंडा रहना चाहिए और देश रहना चाहिए। मुझे विश्वास है कि यह झंडा रहेगा। हम और आप रहें या न रहें लेकिन भारत का सिर ऊँचा रहेगा।" ये उद्गार हैं पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के, जो उन्होंने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से व्यक्त किए थे।

लाल बहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्टूबर, सन् 1904 ई0 को मुगलसराय (तत्कालीन वाराणसी वर्तमान चंदौली) के एक साधारण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम शारदा प्रसाद तथा माता का नाम रामदुलारी देवी था। अनेक सद्गुणों के कारण समाज में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।
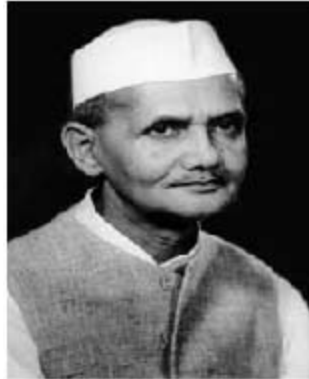
बालक लाल बहादुर जब केवल डेढ़ वर्ष के थे, उनके पिता का देहांत हो गया। पिता का साया उठते ही परिवार का सारा भार माता पर आ पड़ा, किंतु उन्होंने अपना धैर्य न छोड़ा। अब वे बेटे तथा दो पुत्रियों के साथ अपने पुश्तैनी मकान रामनगर में आकर रहने लगीं। माँ की सारी आशाओं के केंद्र यही बच्चे थे। अनेक अभावों और कठिनाइयों को झेलते हुए उन्होंने इन बच्चों का पालन-पोषण किया।

अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर बालक लाल बहादुर वाराणसी आ गए। पढ़ने-लिखने में लाल बहादुर की विशेष रुचि थी। वे बहुत ही सीधे-सादे, शांत और मृदुल स्वभाव के बालक थे। साथियों से सदा हिल-मिलकर रहते थे। छोटी-छोटी बातों पर झगड़ना उनके स्वभाव में नहीं था। स्वयं कष्ट सह लेते, पर किसी को कोई कष्ट न देते। सबसे प्रेम भाव रखते। यही कारण था कि वे सभी शिक्षकों और सहपाठियों के प्रिय बने हुए थे।

लाल बहादुर बनारस के हरिश्चंद्र हाईस्कूल में पढ़ रहे थे। उस समय लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की यह वाणी "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" पूरे देश में गूँज रही थी। इससे उन्हें देशभक्ति की प्रेरणा मिली। बनारस में उन्हें गांधी जी को पहली बार देखने का अवसर मिला। उनके भाषण से वे बहुत प्रभावित हुए। वह भाषण उनके

लिए देश-प्रेम और देश-सेवा का मंत्र बन गया। अब वे अध्ययन के साथ स्वराज आंदोलन में भी समय-समय पर भाग लेने लगे।
गांधी जी का असहयोग आंदोलन आरंभ हुआ। लोग सरकारी नौकरी, स्कूल, कचहरी आदि छोड़कर आंदोलन मे भाग लेने लगे। गाँवों के किसान और मजदूर इस आंदोलन में शामिल होने लगे। लाल बहादुर शास्त्री भी पढ़ाई छोड़कर आंदोलन में कूद पड़े। आजादी की इस लड़ाई में उन्हें कई बार जेल की यातनाएँ सहनी पड़ीं किंतु वे अपने लक्ष्य से नहीं डिगे।

स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए बनारस में काशी विद्यापीठ की स्थापना सन् 1921 *ई0 में हो चुकी थी। लाल बहादुर जी काशी विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण करने लगे। सन्* 1926 *ई0 में उन्होंने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। अब वे लाल बहादुर से लाल बहादुर शास्त्री बन गए।*

अध्ययन समाप्त कर शास्त्री जी देश सेवा में सक्रिय हो गए। पहले वे प्रदेश कांग्रेस के मंत्री बने। फिर उत्तर प्रदेश व्यवस्थापिका के सदस्य चुने गए। इस बीच भी इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। उन्हें जो भी काम दिये गए, वे बड़ी ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा एवं परिश्रम के साथ करते रहे। इन गुणों से प्रभावित हो पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें आनंद भवन में बुला लिया।

'भारत छोड़ो आंदोलन' में उन्हें पुनः सन् 1942 *ई0 में जेल जाना पड़ा। जेल जाने से शास्त्री जी के परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई पर इससे वे घबराए नहीं। सदैव अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहे।*

देश स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्र भारत में अपनी सरकार बनी। प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें केंद्रीय मंत्रिमंडल में रेल मंत्री बनाया। इस क्षेत्र में उन्होंने अनेक सुधार किए। उनके समय में एक भीषण रेल दुर्घटना हुई। इस दुर्घटना से दुःखी होकर शास्त्री जी ने मंत्रीपद से त्यागपत्र दे दिया। बाद में उन्हें उद्योग मंत्री तथा स्वराष्ट्र मंत्री का दायित्व दिया गया। उन्होंने सभी पदों पर बड़ी निष्ठा, तत्परता और ईमानदारी से कार्य किया।

पंडित जवाहर लाल नेहरू के निधन के बाद शास्त्री जी सर्वसम्मति से भारत के प्रधानमंत्री बने। शास्त्री जी के सीधे-सादे व्यक्तित्व में अद्भुत दृढ़ता भरी हुई थी। प्रधानमंत्री बनने के कुछ समय बाद ही भारत पर पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया। देश उन दिनों अनेक समस्याओं से जूझ रहा था। खाद्यान्न की इतनी कमी थी कि अमेरिका से गेहूँ मँगाना पड़ता था। ऐसे समय में शास्त्री जी ने 'जय-जवान, जय-किसान' का नारा देकर देशवासियों के स्वाभिमान को जगाया। उन्होंने कहा - "पेट पर रस्सी बाँधो, साग-सब्ज़ी अधिक खाओ। सप्ताह में एक बार शाम को उपवास रखो। हमें जीना है तो इज्जत से जिएँगे, वरना भूखे मर जाएँगे। बेइज्जती की रोटी से इज्जत की मौत अच्छी रहेगी।" फिर हरित क्रांति प्रारंभ हुई जिस कारण भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल हुआ।
भारत-पाक युद्ध में भारत विजयी हुआ। इस विजय ने भारत का मस्तक ऊँचा कर दिया। युद्ध समाप्त होने के बाद रूस में भारत-पाकिस्तान के बीच ताशकंद समझौता हुआ।
उसी रात 10 *जनवरी, सन्* 1966 *ई0 को हृदय गति रुक जाने से ताशकंद में ही उनका निधन हो गया। सारा संसार शोक में डूब गया। भारत ने अपने इस महान लोकप्रिय नेता को सदा-सदा के लिए खो दिया। शांति के इस देवदूत के लिए कवि सोहनलाल द्विवेदी ने लिखा है -*

शांति खोजने गया, शांति की गोद सो गया।

मरते-मरते विश्व-शांति के बीज बो गया।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. *लाल बहादुर शास्त्री का जन्म कहाँ हुआ था* ?
2. *शास्त्री जी ने रेल मंत्री का पद क्यों छोड़ा* ?
3. *देश में खाद्यान्न की समस्या होने पर शास्त्री जी ने क्या किया* ?
4. *शास्त्री जी के स्वभाव की क्या-क्या विशेषताएँ थीं* ?
5. *लाल बहादुर शास्त्री के जीवन पर दस वाक्य लिखिए।*
6. *इन महापुरुषों के लोकप्रिय नारे कौन से थे ?*

जैसे:- पं0 *जवाहर लाल नेहरू* - *आराम हराम है।*
महात्मा गांधी, *लोकमान्य तिलक*, *लाल बहादुर शास्त्री*, *सुभाष चंद्र बोस*
7. *वर्षों को घटनाओं से जोड़िए-*

सन् 1904 ई0	*शास्त्री जी की मृत्यु*
सन् 1926 ई0	*भारत छोड़ो आंदोलन में शास्त्री जी जेल गए*
सन् 1942 ई0	*लाल बहादुर ने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की*
सन् 1966 ई0	*शास्त्री जी का जन्म*

पाठ - 33

श्रीनिवास रामानुजन

मद्रास (चेन्नई) प्रान्त के तन्जौर जिले के इरोड नामक छोटे से गाँव के स्कूल की घटना है। प्रारम्भिक कक्षा के अध्यापक कक्षा में आए। उन्होंने विद्यार्थियों को कार्य दिया- "आधे घण्टे में एक से सौ तक की सब संख्याओं का जोड़ निकालकर मुझे दिखाइए।" सारे बच्चे सवाल हल करने में लग गए। दस मिनट भी न बीते होगें कि सात वर्ष का एक विद्यार्थी सवाल हल कर गुरुजी से जाँच कराने ले आया। गुरुजी ने सवालों को जाँचा और सही उत्तर पाया। षिक्षक यह देखकर हैरान रह गए कि बालक ने सवाल हल करने में जिस सूत्र का प्रयोग किया है, उसका ज्ञान केवल उच्च कक्षा के विद्यार्थी को ही हो सकता है।

अध्यापक ने बालक से पूछा- "बेटा, तुमने यह सूत्र कहाँ से सीखा ?" बालक बोला, "किताब से पढ़कर।"

अध्यापक इस बात को जानकर आष्चर्यचकित रह गए कि बालक ने इस सूत्र का ज्ञान किसी बड़ी कक्षा की पुस्तक को पढ़कर किया है। गणित की यह विलक्षण प्रतिभा वाले बालक श्रीनिवास रामानुजन आयंगर थे, जिन्होंने सिद्ध कर दिया कि गणित एक रोचक विषय है जिसका खेल-खेल में अध्ययन किया जा सकता है।

श्रीनिवास रामानुजन आयंगर का जन्म तमिलनाडु के इरोड गाँव में 22 दिसम्बर 1887 ईसवी को एक साधारण परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही रामानुजन की गणित में विषेष रुचि थी। वे गणित को खेल मानकर संख्याओं से खेलते रहते। मैजिक वर्ग (समयोगदर्षी) बनाना उनका प्रिय शौक था। रामानुजन की गणित में विलक्षण प्रतिभा को देखकर अध्यापकों को यह विष्वास हो गया कि वे एक दिन गणित में विषेष कार्य करेंगे।

गणित में विषेष रुचि के कारण रामानुजन बड़ी कक्षाओं की गणित की किताबें भी माँग कर पढ़ लेते थे। वह स्लेट पर प्रष्नों को हल किया करते थे। ऐसा इसलिए करते थे जिससे कॉपी का खर्च बच जाय।
रामानुजन जब हाईस्कूल में पढ़ रहे थे तो एक हितैषी ने उन्हें 'जार्जषुब्रिज' की उच्च गणित की एक पुस्तक उपहार स्वरुप भेंट की। रामानुजन रात-दिन उस पुस्तक के अध्ययन में तल्लीन हो गए।

सोलह वर्ष की आयु में रामानुजन ने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्हे छात्रवष्ति मिलने लगी। गणित को अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक समय देने के कारण वह एफ0 ए0 (इण्टर प्रथम वर्ष) की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए। परिणामस्वरुप उन्हें छात्रवष्ति मिलनी बन्द हो गई। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। अतः उन्हांेने प्राइवेट परीक्षा दी किन्तु असफल रहे। उन्होंने असफलता से हार नहीं मानी और घर पर रहकर ही गणित पर मौलिक शोध करना प्रारम्भ कर दिया।
इसी बीच रामानुजन का विवाह हो गया। वह जीविकोपार्जन के लिए नौकरी तलाषने लगे। बड़ी मुष्किल से 'मद्रास ट्रस्ट पोर्ट' के दफ्तर में उन्हें क्लर्क की नौकरी मिल गई।
दफ्तर में मध्यावकाष के समय उनके अन्य साथी जलपान के लिये बाहर चले जाते तब भी वे अपनी सीट पर बैठे गणित के प्रष्न हल करते रहते । एक दिन उनके कार्यालय के अधिकारी ने उन्हंे देख लिया। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि रामानुजन गणित के कुछ सूत्र लिख रहे हैं। उनकी मेज की दराज खोलने पर ऐसे तमाम पन्ने मिले जो गणित के सूत्रों से भरे पड़े थे। अधिकारी ने उन सूत्रों को पढ़ कर स्वयं को धिक्कारा ''क्या यह प्रतिभाषाली युवक क्लर्क की कुर्सी पर बैठने लायक है ?'' उसने रामानुजन के उन पन्नों को इंग्लैण्ड के महान गणितज्ञ प्रोफेसर जी0 एच0 हार्डी के पास भेज दिया। प्रो0 हार्डी उन पन्नों को देख कर अत्यन्त प्रभावित हुए और इस नतीजे पर पहुँचे कि रामानुजन जैसी प्रतिभा को अन्धेरे से बाहर निकालना ही चाहिए। उन्होंने प्रयास करके रामानुजन को इंग्लैण्ड बुलाया और बड़े-बड़े गणितज्ञो से उनका परिचय कराया। शीघ्र ही रामानुजन के कुछ शोध पत्र वहाँ की पत्र पत्रिकाओं मे प्रकाषित हुये जिन्हें पढ़ कर पाष्चात्य जगत के विद्वान आष्चर्य चकित रह गए। प्रोफेसर हार्डी ने महसूस किया कि रामानुजन का गणित के कुछ क्षेत्रों मे पूर्ण अधिकार है, लेकिन कुछ की कम जानकारी है। उन्हें कम जानकारी वाली चीजें पढ़ाने का उत्तरदायित्व प्रो0 हार्डी ने स्वयं ले लिया। हार्डी ने जितना रामानुजन को पढ़ाया उससे ज्यादा रामानुजन से सीखा भी। प्रोफेसर हार्डी ने एक जगह लिखा है- '' मैंने रामानुजन को पढ़ाने की कोषिष की और किसी हद तक इसमें सफल भी हुआ लेकिन रामानुजन को मैंने जितना सिखाया, उससे ज्यादा उनसे सीखा भी।''

रामानुजन इंग्लैण्ड में रहते हुये भी खान पान, आचार-विचार और व्यवहार में पूर्णतः भारतीय बने रहे। गणित के क्षेत्र में निरन्तर शोध कार्यांे से उनकी प्रतिष्ठा लगातार बढ़ती गई। इंग्लैण्ड की प्रसिद्ध संस्था,'रॉयल सोसाइटी' जो वैज्ञानिक शोधों को

प्रोत्साहित करती थी, ने वर्ष 1918 ई0 में रामानुजन को अपना फेलो (सम्मानित सदस्य) बनाकर सम्मानित किया। सम्पूर्ण एषिया में इस सम्मान से सम्मानित होने वाले ये पहले व्यक्ति थे।

निरन्तर मानसिक श्रम और खान-पान मंे लापरवाही से उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा।बीमारी की हालत में भी वह गणितीय सूत्रों से खेलते रहे। आखिर रोगी शरीर कब तक चलता। वह स्वदेष लौट आये और 26 अप्रैल, 1920 को 33 वर्ष की अल्पायु में ही चिर निद्रा में विलीन हो गए। उनके निधन पर प्रोफेसर हार्डी ने कहा था, ”आज हमारे बीच से अमूल्य हीरा खो गया। हम सब देख चुके हैं कि रामानुजन से पूर्व संसार में किसी भी व्यक्ति द्वारा इतनी कम आयु में गणित जैसे जटिल समझे जाने वाले विषय पर इतनी अधिक खोज नहीं की गई है।“
वास्तव में रामानुजन ने इतनी कम उम्र में गणित में जो योगदान दिया, वह अभूतपूर्व है। ऐसे महान गणितज्ञ पर हम सब भारतीयों को गर्व है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. रामानुजन को विद्यालय की पढ़ाई क्यों छोड़नी पड़ी ?
2. कार्यालय के अधिकारी ने स्वयं को क्यों धिक्कारा ?
3. रामानुजन के बारे में प्रो0 हार्डी ने क्या टिप्पणी की थी ?

4. सही विकल्प चुनिए -

रामानुजन के लिए गणित-

(क) एक कठिन विषय था।
(ख) हास्यास्पद विषय था।
(ग) रोचक विषय था, जिसे खेल-खेल में सीखा जा सकता है।
(घ) बच्चों का विषय नहीं था।

रामानुजन ने सवाल तुरंत हल कर दिया क्योंकि-

(क) सवाल अत्यंत सरल था।
(ख) वह उससे संबंधित सूत्र बड़ी कक्षा की किताब पढ़कर जान चुके थे।
(ग) उन्होंने उत्तर किसी से पूछ लिया था।
(घ) यह सवाल गुरु जी पहले ही हल करा चुके थे।

5. सही (√) अथवा गलत (x) का चिह्न लगाइए-

रामानुजन मैट्रिक की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए क्योंकि उन्होंने गणित के अलावा अन्य विषयों की बहुत कम तैयारी की थी।

रामानुजन खान-पान और व्यवहार में पूर्णतः भारतीय थे।

दफ्तर के मध्यावकाश के समय में रामानुजन जलपान करते थे।
आपकी किस विषय में सबसे ज्यादा रुचि है? आपको यह विषय सबसे ज्यादा क्यो प्रिय है? अपने विचार लिखिए।

डॉ0 विश्वेश्वरैया

डॉ0 विश्वेश्वरैया को आधुनिक भारत का भगीरथ कहा जाता है। प्राचीन काल में महाराज भगीरथ ने अपने तपोबल से गंगा को धरती पर उतारकर अपने पुरखों के उद्धार के साथ ही जन-सामान्य का कल्याण किया था। आधुनिक युग मंे डॉ0 विश्वेश्वरैया ने अपनी योग्यता और कर्मठता से मानव जीवन को जल का अपरिमित वरदान प्रदान किया। उन्होंने करोड़ों एकड़ बंजर धरती को उर्वर बनाया तथा अनेक उच्छृंखल नदियों को अपनी मर्यादा में बहने के लिए विवश कर दिया।

डॉ0 विश्वेश्वरैया का जन्म मैसूर प्रदेश के मुद्देनल्ली गाँव में 15 सितम्बर, सन् 1861 मे हुआ था। उनका पूरा नाम मोक्षगुडम् विश्वेश्वरैया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात 1962 ई0 में उनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार उन्हंे देश की सेवा करने के लिए सौ वर्षों का सुदीर्घ जीवन प्राप्त हुआ। डॉ0 विश्वेश्वरैया बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे कुशल इंजीनियर, विख्यात स्थापत्यविद्, नए-नए उद्योग-धन्धों के जन्मदाता, शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ और देश-भक्त थे। सादगी और स्वाभिमान में वे बेजोड़ थे।

डॉ0 विश्वेश्वरैया का जीवन साहस, संघर्ष और सफलता की अनुपम कहानी है। इनका जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ था। बचपन अभावों तथा संकटों में बीता किन्तु इन्होंने साहस का दामन कभी नहीं छोड़ा। बंगलौर में पढ़ते समय दूसरे विद्यार्थियों को पढ़ाकर कमाये हुये धन से वे अपना काम चलाते थे। परीक्षाआंे में प्रथम आने से मिलने वाली छात्रवृत्ति से भी उनकी आर्थिक समस्याओं का समाधान होता था। इस

प्रकार विश्वेश्वरैया अपने परिश्रम, कर्त्तव्यनिष्ठा और धैर्य के बल पर निरन्तर आगे बढ़ते रहे। उन्होंने असम्भव कार्यों को भी सम्भव करने की अपार क्षमता अर्जित की। उनके जीवन के अनेक रोचक प्रसंग हैं जो उनकी मौलिक सूझ-बूझ और प्रतिभा को उजागर करते हैं।

1893 ई0 में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने विश्वेश्वरैया की अग्नि-परीक्षा ली। मुम्बई (बम्बई) सरकार उन दिनों सिन्ध की सक्कर जल योजना को यथाशीघ्र पूरा करना चाहती थी किन्तु जो अंग्रेज इंजीनियर उस काम की देख-रेख कर रहा था उसकी अचानक मृत्यु हो गयी। कार्य रुक गया। अंग्रेजों की दृष्टि में उस समय भारतीय लोग ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए अयोग्य समझे जाते थे, किन्तु तत्काल कार्यक्रम के लिए कोई अंग्रेज इंजीनियर उपलब्ध नहीं था। अंग्रेजों ने इस नवोदित भारतीय इंजीनियर को यह कार्य परीक्षा के रूप में सौंपा। सिन्ध की चिलचिलाती हुई धूप में विश्वेश्वरैया ने बड़ी योग्यता एवं कर्मठता से इस कार्य को समय के भीतर ही पूरा करके अपनी योग्यता प्रमाणित कर दी। मुम्बई (बम्बई) के तत्कालीन गवर्नर ने उसके उद्घाटन के अवसर पर इस भारतीय इंजीनियर की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

हैदराबाद शहर के बीच में मूसा नदी बहती है। 28 सितम्बर 1908 ई0 में इस नदी में बहुत बाढ़ आई, जिससे दो हजार से अधिक लोग बह गए। तत्कालीन हैदराबाद के निजाम ने सरकार से अनुरोध किया कि भविष्य में बाढ़ से बचाव के लिए सुझाव देने हेतु किसी योग्य इंजीनियर की सेवा उपलब्ध करा दें। डॉ0 विश्वेश्वरैया उस समय इटली में थे। मुम्बई (बम्बई) के गवर्नर ने उन्हें तार भेजकर कहा, "हैदराबाद के उद्धार के लिए हम आपसे भारत लौटने का अनुरोध करते हैं।" भारत लौटकर वे हैदराबाद पहुँचे। उन्होंने उच्छृंखल मूसा नदी पर बाँध बाँधकर जलाशयों का निर्माण कराया और जन-धन का विनाश करने वाली मूसा नदी को हैदराबाद के लिए वरदान बना दिया।

विश्वेश्वरैया ने तत्कालीन मैसूर राज्य की सिंचाई योजना सम्बन्धी अनेक कार्य किए। कावेरी नदी पर बना "कृष्णराज" सागर उनकी अक्षय कीर्ति का स्मारक है। 130 फुट ऊँचे इस बाँध में 4800 करोड़ घनफुट पानी जमा हो सकता था तथा 1,50,000 एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती थी। 1912 ई0 में बने इस बाँध का जलाशय देश का सबसे बड़ा जलाशय था। इसे देखकर महात्मा गांधी ने कहा था-"केवल 'कृष्णराज' सागर ही, जो संसार में अपनी तरह का एकमात्र जलाशय है, सर विश्वेश्वरैया की स्मृति को चिरस्थायी बनाए रखने में समर्थ है।"

आर्थिक विकास और औद्योगीकरण के क्षेत्र में डॉ0 विश्वेश्वरैया ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उनका दृढ़ मत था कि-"देश का औद्योगीकरण करो या मरो।" जिस समस्या का आज देश सामना कर रहा है उसका पूर्वाभास उन्हें हो गया था। उन्होंने तत्कालीन मैसूर राज्य में बैंक, मैसूर चैम्बर ऑफ कामर्स, चन्दन तेल कारखाना,

सरकारी साबुन कारखाना आदि उद्योग आरम्भ किए थे। भद्रावती के प्रसिद्ध लोहा और इस्पात कारखाने की योजना डॉ0 विश्वेश्वरैया ने ही तैयार की थी।
डॉ0 विश्वेश्वरैया की मान्यता थी कि उचित शिक्षा ही देश की आर्थिक अव्यवस्था को दूर कर सकती है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक वे शिक्षा के प्रचार-प्रसार के प्रति प्रयत्नशील रहे। जीवन के सौवें वर्ष में पदार्पण करने पर उन्होंने अपने एक मित्र से कहा था- " भारत कैसे उन्नति कर सकता है जबकि उसकी अस्सी प्रतिशत जनता अनपढ़ है।" वे कहते थे कि सभी प्रकार की प्रगति का आधार शिक्षा ही है। उन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय की नींव डाली। यह भव्य विश्वविद्यालय जब बनकर तैयार हुआ तो मैसूर के महाराज ने अपनी प्रजा की ओर से इस अवसर पर डॉ0 विश्वेश्वरैया की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा था कि डॉ0 विश्वेश्वरैया की देश-भक्ति, उत्साह और कर्मशक्ति के कारण ही हमने स्वप्न का साकार रूप देखा है। यह विश्वविद्यालय अपने निर्माता को सदैव स्मरण कराता रहेगा।

डॉ0 विश्वेश्वरैया देश-भक्त और स्वाभिमानी व्यक्ति थे। अपने पूना निवास-काल में वे न्यायाधीश राना डे, गोखले तथा तिलक के सम्पर्क में आए और स्वदेशी प्रभाव में रंग गए। अंग्रेजों ने उनकी तारीफ के पुल बाँधे उन्हें प्रलोभन दिया किन्तु वे जानते थे कि गुलामी की रोटी कितनी दुःखद है। सैंतालीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और जीवन का शेष भाग स्वतन्त्रतापूर्वक मानव सेवा में लगाया। वह देशहित को सबसे ऊँचा स्थान देते थे। डॉ0 विश्वेश्वरैया की योग्यता और क्षमता का प्रचार-प्रसार विदेशों में भी खूब हुआ। उन्हें अनेक बार विदेशों में सम्मानित किया गया।
1920 ई0 *की अमेरिका यात्रा का एक रोचक प्रसंग है। डॉ0 विश्वेश्वरैया एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री से मिलने गए और भारत की अर्थव्यवस्था के बारे में उन्होंने कुछ सुझाव माँगे। उस अमेरिकी अर्थशास्त्री ने कुछ भी देने से इनकार कर दिया और विश्वेश्वरैया के साथ आए हुए सहायक के कान में कहा-"इन महाशय को बताइए कि ये अपने देश वापस जाएँ और अपने देश के संविधान को एक राष्ट्रीय सरकार के संविधान में बदलें तब पास आएं।" उस अमेरिकी अर्थशास्त्री का व्यंग्य सुनकर विश्वेश्वरैया को बड़ा आघात लगा और उन्होंने मन ही मन देश को स्वतन्त्र कराने का दृढ़ संकल्प लिया।*

डॉ0 विश्वेश्वरैया अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति थे। किसी भी दबाव में वे सत्यमार्ग से विरत नहीं होते थे। 1921 ई0 *में मुम्बई तकनीकी एवं औद्योगिक शिक्षण समिति के सदस्य के पद पर उनकी नियुक्ति हुई। इस समिति में अंग्रेज सदस्यों की संख्या दस थी और भारतीयों की सात। अंग्रेज सदस्य भारत में उच्च तकनीकी शिक्षा के विरोधी थे किन्तु डॉ0 विश्वेश्वरैया इनके प्रबल समर्थक थे। लॉर्ड लॉयड ने डॉ0 विश्वेश्वरैया को प्रभावित करने का पूरा-पूरा प्रयास किया परन्तु देश-भक्त डॉ0 विश्वेश्वरैया ने उनकी एक न सुनी। अन्त में डॉ0 विश्वेश्वरैया के सुझावों को विश्वविद्यालय को मानना पड़ा और मुम्बई विश्वविद्यालय में उच्च रासायनिक तकनीकी विभाग खोलने का निश्चय किया गया।*

वे सरल, सज्जन, उदार और मेधावी पुरुष थे। उनका जीवन सादगी और सद्व्यवहार का प्रतीक था। वे भारतीयता का हृदय से आदर करते थे। वृद्धावस्था में भी वे आगन्तुकों को बरामदे तक छोड़ने जाते थे। उनकी वाणी की मिठास, उनका निश्छल व्यवहार और आकर्षक व्यक्तित्व मिलने वालों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता था।
भारत स्वतन्त्र हुआ तो देश ने इस महान रत्न का हार्दिक सम्मान किया। अंग्रेजों ने उन्हें "सर" की उपाधि दी थी। भारत ने इन्हें सर्वोच्च "भारत रत्न" की उपाधि से अलंकृत किया।
डॉ0 विश्वेश्वरैया आधुनिक भारत के महान कर्मयोगी थे। कर्म को ही वे पूजा और धर्म मानते थे। भारतीय संस्कृति और आचार-विचार में उनकी महान आस्था थी। बाह्य आडम्बर का उन्होंने सदैव विरोध किया। एक बार जब वे यात्रा कर रहे थे तो उनके एक मित्र ने एक भव्य मन्दिर के पास कार रोक दी और चाहा कि डॉ0 विश्वेश्वरैया भी उनके साथ भगवान के दर्शन करने चलें। वे मन्दिर के अन्दर नहीं गये और मंदिर की स्थापत्यकला का निरीक्षण करते रहे। मित्र के लौटने पर उन्होंने कहा- "भगवान जब हमें अपने-अपने काम करने का आदेश देता है तो वह हमसे अपनी पूजा नहीं, बल्कि हमारे कर्तव्य की पूर्ति चाहता है।"

डॉ0 मोक्षगुडम् विश्वेश्वरैया भारत माता के अमरपुत्र हैं। शताब्दियों तक भारतवासी उनके महान कार्यों का स्मरण कर प्रगति की प्रेरणा पाते रहेंगे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. डॉ0 विश्वेश्वरैया को आधुनिक भारत का भगीरथ क्यों कहा जाता है?
2. 'कृष्णराज सागर' कहाँ बना हुआ है?
3. हैदराबाद के लिए मूसी नदी को डॉ0 विश्वेश्वरैया ने किस प्रकार वरदान बना दिया ?
4. डॉ0 विश्वेश्वरैया के जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है?
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) डॉ0 विश्वेश्वरैया का जीवन .... कहानी है।
(ख) डॉ0 विश्वेश्वरैया की मान्यता थी कि .... दूर करती है।

6. नीचे लिखे कथनों का सही मिलान कीजिए-

(क) भारत कैसे उन्नति कर सकता है — और स्वाभिमानी व्यक्ति थे।
(ख) डॉ0 विश्वेश्वरैया देशभक्त — जबकि उसकी अस्सी प्रतिशत जनता अनपढ़ है।
(ग) 15 सितंबर, सन् 1961 ई0 में हुआ था — संघर्ष और सफलता की

अनुपम कहानी है।
(घ) डॉ0 *विश्वेश्वरैया का जीवन साहस* डॉ0 *विश्वेश्वरैया का जन्म मैसूर प्रदेश के* *मुद्देनल्ली गाँव*

पण्डित जवाहर लाल नेहरू

भारत के प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू इंग्लैण्ड गए। वहाँ उनकी मुलाकात ब्रिटेन के पूर्व प्रद्यानमंत्री चर्चिल से हुई। पिछली बातों को याद कर चर्चिल ने पूछा- आपने अंग्रेजों के शासन में कितने वर्ष जेल में बिताए थे? ''लगभग दस वर्ष''- नेहरू ने कहा। तब अपने साथ किये गए व्यवहार के प्रति आपको हमसे घृणा करनी चाहिए।'' चर्चिल ने सवालिया अंदाज में पूछा। नेहरू जी ने उत्तर दिया- ''बात ऐसी नहीं है। हमने ऐसे नेता के अधीन काम किया है जिसने हमें दो बातें सिखायी हैं''- एक तो यह कि किसी से डरो मत और दूसरी, किसी से घृणा मत करो। हम उस समय आपसे डरते नहीं थे, इसलिए अब घृणा भी नहीं करते।''
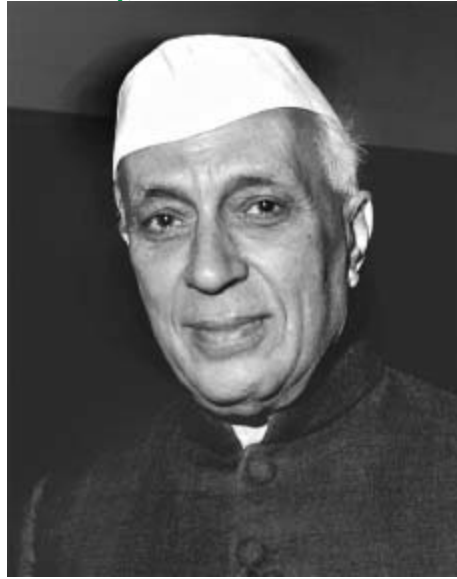
पण्डित नेहरू एक कुशल राजनीतिज्ञ के साथ-साथ उच्च कोटि के विचारक थे। उनकी राजनीति स्वच्छ और सौहार्दपूर्ण थी। स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में उन्होंने कारावास में रहकर अनेक पुस्तकों की रचना की। 'मेरी कहानी', 'विष्व इतिहास की झलक', 'भारत की खोज' उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। राजनीति एवं प्रषासन की समस्याओं से घिरे रहने के बावजूद वे खेल, संगीत, कला आदि के लिए समय निकाल लेते थे। बच्चों को तो वे अति प्रिय थे। आज भी वे बच्चों के बीच 'चाचा नेहरू' के नाम से

लोकप्रिय हैं। उनके जन्मदिन 14 नवम्बर को हमारा देश 'बाल दिवस' के रूप में मनाता है।

पण्डित जवाहर लाल नेहरू का जन्म इलाहाबाद में 14 नवम्बर सन् 1889 ई0 को हुआ। इनके पिता मोतीलाल नेहरू प्रसिद्ध वकील थे। माता स्वरूपरानी उदार विचारों वाली महिला थीं। नेहरू जी की आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। अपने षिक्षकों में एक एफ. टी. ब्रुम्स के सानिध्य में रहकर जहाँ इन्होंने अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया वहीं मुंषी मुबारक अली ने इनके मन में इतिहास और स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति जिज्ञासा पैदा कर दी। यही कारण है कि बचपन से ही उनके मन में दासता के प्रति विद्रोह की भावना भर उठी।

उच्च षिक्षा प्राप्त करने के लिए नेहरू जी को विलायत (इंग्लैण्ड) भेजा गया। वहाँ रहकर उन्होंने अनेक विषयों की पुस्तकों का गहन अध्ययन किया। वकालत की षिक्षा पूरी करने के बाद वे भारत लौट आए और इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकालत करने लगे। वकालत में उनका मन न लगा। उनके मन में तो देष को स्वतंत्र कराने की इच्छा बलवती हो रही थी। इसी समय उनकी भेंट महात्मा गांधी से हुई। इस मुलाकात ने उनकी जीवनधारा ही बदल दी।

उस समय देष में जगह-जगह अंग्रेजों का विरोध लोग अपने-अपने तरीकों से कर रहे थे। 1919 ई0 में जलियावाला बाग में अंग्रेज अफसर जनरल डायर द्वारा स्वतन्त्रता सेनानियों की नष्षंस हत्या की गयी। इससे पूरे देष में क्रोध की ज्वाला धधक उठी। 1920 ई0 में गांधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन चलाया गया। जवाहर लाल नेहरू भी पूर्ण मनोयोग से स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े।

1921 ई0 में इंग्लैण्ड के राजकुमार 'प्रिंस ऑफ वेल्स' के भारत आने पर अंग्रेज शासकाें द्वारा राजकुमार के स्वागत का व्यापक स्तर पर विरोध किया गया। इलाहाबाद में विरोध का नेतृत्व पण्डित नेहरू को सौंपा गया। इनके साथ पिता मोतीलाल नेहरू भी थे। दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। यह जवाहर की प्रथम जेल यात्रा थी। इसके बाद उन्हें नौ बार जेल यात्रा करनी पड़ी, किन्तु वे विचलित नही हुए।

लम्बे संघर्ष के बाद अन्ततः 15 अगस्त 1947 ई0 को देष आजाद हुआ। जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। लम्बी अवधि की परतन्त्रता के बाद देष की आर्थिक स्थिति अत्यन्त जर्जर हो चुकी थी। अपनी दूरदर्षिता और कर्मठता से नेहरू ने कष्षि और उद्योगों के विकास हेतु पंचवर्षीय योजनाओं की आधारषिला रखी। आज देष में जो बड़े-बड़े कारखाने, वैज्ञानिक प्रयोगषालाएँ और विषाल बाँध आदि दिखाई पड़ते हैं, इन्हीं पंचवर्षीय योजनाओं की देन हैं। भाखड़ा नांगल बाँध को देखकर नेहरू जी ने कहा था-

सहिष्णु नेहरू

''सामने के पुलिस अफसर को गिरा कर खुद घोड़े पर चढ़ जाऊँ, यह कितना आसान था। मगर लम्बे अर्से की शिक्षा और अनुशासन ने मेरा साथ दिया और मैंने अपने सिर को मार से बचाने के सिवाय हाथ तक नहीं उठाया''

-जवाहरलाल

नेहरू
(लखनऊ में साइमन कमीशन का विरोध करते हुए पुलिस की बर्बर पिटाई के समय उनके मन के विचार)

मनुष्य का सबसे बड़ा तीर्थ, मंदिर, मस्जिद, और गुरुद्वारा वहीं है, जहाँ इंसान की भलाई के लिए काम होता है।

नेहरू जी ने देष के चहुँमुखी विकास हेतु अनेक कार्य किए। वे जानते थे कि बिना अणुषक्ति के देष शक्ति सम्पन्न नहीं हो सकता, अतः उन्होंने परमाणु आयोग की स्थापना की। वे परमाणु ऊर्जा को सदैव विकास के कार्यों में लगाने के पक्षधर थे। ट्राम्बे के परमाणु संस्थान में उन्होंने एक बार कहा था-

चाहे जो भी हो, हम किसी भी हालत में अणुषक्ति का प्रयोग विनाषकारी कार्यों के लिए नहीं करेंगे।

जवाहर लाल नेहरू बिना थके प्रतिदिन अठारह से बीस घण्टे कार्य करते थे। महान कवि राबर्ट फ्रास्ट की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनका आदर्ष थीं-

वन हैं सुन्दर और सघन पर मुझको वचन निभाना है

नींद सताए इसके पहले कोसों जाना है,

मुझको कोसों जाना है।

नेहरू जी ने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण देष सेवा में लगाया। वे स्वतन्त्रता संग्राम में देष के लिए लड़े और देष को विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में समर्थ बनाया। पचहत्तर वर्ष की आयु में 27 मई 1964 ई0 को अस्वस्थ होने के कारण उनका निधन हो गया। उन्होंने इच्छा व्यक्त की थी कि मष्त्यु के बाद उनकी चिता की भस्म खेतों में बिखेर दी जाय। नेहरू जी की इस इच्छा का पूरा सम्मान किया गया।

देष के इस महान सपूत के कार्य और विचार आज भी हमारा पथ प्रषस्त कर रहे हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. नेहरू जी ने वकालत छोड़ने का निर्णय क्यों लिया?
2. देश के आर्थिक विकास के लिए नेहरू जी ने प्रधानमंत्री के रूप में क्या-क्या कदम उठाए?
3. नेहरू जी को प्रथम बार कब और क्यों जेल जाना पड़ा?
4. 'प्रिंस ऑफ वेल्स' के भारत आगमन पर उनके स्वागत का विरोध क्यों किया गया ?

5. सही मिलान कीजिए-

(क) सन् 1921 ई0 वह स्थान जहाँ जनरल डायर ने निरीह नता पर फायरिंग कराई थी।
(ख) मुंशी मुबारक अली बाल दिवस
(ग) मोतीलाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री
(घ) जवाहर लाल नेहरू जवाहर लाल नेहरू के पिता
(ङ) 14 नवंबर एक शिक्षक
(च) जलियाँवाला बाग प्रिंस ऑफ वेल्स का भारत आगमन

6. अपने शिक्षक/शिक्षिका से चर्चा कीजिए-

(क) 14 नवंबर को बाल दिवस क्यों मनाया जाता है?
(ख) जवाहर लाल नेहरू को "चाचा नेहरू" क्यों कहते हैं?

7. अपने स्कूल में 14 नवंबर को साथियों के साथ मिलकर एक मेले का आयोजन कीजिए। इसके लिए कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं-
(क) यह तय कीजिए कि मेले में क्या-क्या होगा- खेल, प्रतियोगिताएँ, वाद-विवाद, नाटक, सांस्कृतिक कार्यक्रम....
(ख)साथियों के बीच जिम्मेदारियाँ बाँटें- कौन क्या करेगा ?
(ग) मेले में गाँव वालों (अपने माता-पिता) को भी साझीदार कैसे बनाएँगे ?
(घ) अपनी बनाई हुई चीजों की प्रदर्शनी लगवाएँ।
(ङ) शिक्षिका/शिक्षक के साथ चर्चा कीजिए कि और क्या-क्या हो सकता है?

पाठ - 36

डॉ0 राम मनोहर लोहिया

विश्व मानवता के उपासक व विलक्षण प्रतिभा के धनी डॉ0 राम मनोहर लोहिया बीसवीं सदी के महान समाजवादी चिन्तक थे। उनका जीवन दुःखी, पीड़ित व शोषित जनता को समर्पित था, जिनके सुधार व उत्थान के लिए वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। जहाँ अन्याय के खिलाफ विरोध करने का उनमें अदम्य साहस था, वहीं अपनी गलतियों का एहसास होने पर क्षमा माँगने में उन्हें तनिक भी संकोच या डर नहीं लगता था। उनके सपनों में एक ऐसा विश्व था, जिसमें मानव-मानव के बीच किसी प्रकार का कोई भेदभाव न हो।

ऐसे प्रखर समाजवादी विचारक डॉ0 राम मनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, सन् 1910 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के अन्तर्गत अकबरपुर तहसील में हुआ था जो कि वर्तमान में अम्बेडकर नगर जिले में स्थित है। इनके पिता श्री हीरा लाल लोहिया तथा माता श्रीमती चन्द्री देवी थीं। जब ये लगभग ढाई वर्ष के थे, तभी इनकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। माताजी के न रहने पर इनका पालन-पोषण इनकी दादीजी ने किया।

बचपन से ही यह अपने पिताजी के साथ रहे और उनके जीवन से ही इन्हें राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा मिली। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अकबरपुर के प्राइमरी स्कूल में हुई। अकबरपुर की पढ़ाई समाप्त करने के बाद ये अपने पिता के साथ मुम्बई चले गए। इन्होंने मुम्बई से मैट्रिक, बनारस से इण्टरमीडिएट और कोलकाता के विद्यासागर कॉलेज से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् डॉ0 लोहिया ने बर्लिन (जर्मनी) से सन् 1932 में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। डॉक्टरेट की उपाधि के लिए

डॉ0 लोहिया ने प्रो0 बर्नर जोम्बर्ट के निर्देशन में नमक सत्याग्रह पर अपना शोध कार्य पूरा किया।

डॉ0 लोहिया सन् 1933 के प्रारम्भ में स्वदेश लौटे। स्वदेश लौटने के बाद ये समाज के उत्थान हेतु देश में संचालित समाजवादी आन्दोलन के साथ जुड़ गए। देश की स्वतंत्रता से पूर्व ये भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुखर विरोध करते रहे। सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में भी इन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया और इसे आज़ादी की आखिरी लड़ाई के रूप में स्वीकार किया। ये कई माह तक भूमिगत रहे और इसी समय इन्होंने गुप्त रेडियो स्टेशन की स्थापना की। रेडियो के अनेक प्रसारणों के माध्यम से लोगों में नवीन चेतना जाग्रत की और आन्दोलन को जारी रखा। ब्रिटिश काल में ये कई बार जेल भी गए।

देश की स्वतन्त्रता के बाद ये जीवनपर्यन्त समाजवादी आन्दोलन के साथ जुड़े रहे। सन् 1963 *में ये फर्रुखाबाद संसदीय क्षेत्र से उपचुनाव में लोकसभा के सदस्य चुने गए। मौलिक विचारक, क्रान्तिदर्शी और समाजवाद के प्रेरक स्तम्भ डॉ0 लोहिया का* 12 *अक्टूबर, सन्* 1967 *को देहावसान हो गया।*

डॉ0 राम मनोहर लोहिया एक प्रबुद्ध विचारक और लेखक भी थे। इनकी रचनाएँ जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- इतिहास चक्र, अंग्रेजी हटाओ, धर्म पर एक दृष्टि, मार्क्सवाद और समाजवाद, समाजवादी चिन्तन, संसदीय आचरण आदि।

इन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया तथा उनके लिए लेख भी लिखे। भूमिगत रहते हुए इनकी जंगजू आगे बढ़ो तथा मैं आज़ाद हूँ आदि पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुईं। इनकी रचनाओं में मौलिक चिन्तन के भी पर्याप्त अंश हैं। भूमि सेना और एक घण्टा देश को दो उनके मौलिक चिन्तन के प्रमुख उदाहरण हैं।

डॉ0 लोहिया एक निर्भीक व्यक्ति थे। वह अपने आस-पास की घटनाओं व परिस्थितियों का निष्पक्ष विश्लेषण करते थे। उनके व्यक्तित्व में किसी भी स्तर पर कथनी और करनी में विरोधाभास नहीं था। वे चाहते थे कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन व स्वभाव की अभिव्यक्ति हो। वे इस पक्ष में नहीं थे कि व्यक्तित्व के किसी एक विशिष्ट पक्ष की एकांगी व सीमित वृद्धि हो। उन्होंने अपने कर्म व चिन्तन के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास को सदैव प्राथमिकता प्रदान की।

उनके चिन्तन में गांधी जी के विचारों का गहरा प्रभाव रहा है। अहिंसा के प्रति डॉ0 लोहिया की आस्था, सत्याग्रह के व्यापक प्रयोग में उनका विश्वास, रचनात्मक कार्यक्रमों में उनकी निष्ठा, विकेन्द्रीकरण के आधार पर देश की राजनीति और अर्थनीति में गुणात्मक सुधार लाने का उनका संकल्प गांधी जी की वैचारिक विरासत का प्रमाण है। उनका मत था कि सत्ता का स्रोत केन्द्र नहीं, गाँव की पंचायतें होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि- ''*जनतंत्र तभी सफल हो सकता है जब वाणी की पूर्ण स्वतन्त्रता हो और कर्म पर अनुशासन हो।*'' *राष्ट्र को जाग्रत करना उनका मूल उद्देश्य था।*

वास्तव में उनकी दृष्टि सार्वभौमिक व सम्पूर्ण थी। वह केवल राजनीतिज्ञ नहीं थे। वह भारतीय संस्कृति में डूबकर विश्व संस्कृति की कल्पना करते थे तथा विश्वमानव व विश्वबंधुत्व में विश्वास रखते थे। उनके विचार देश और समाज को एक सूत्र में पिरो सकते हैं क्योंकि उनके विचारों में चिन्तन की गहराई के साथ कर्म की ऊर्जा पैदा करने की क्षमता भी है। उनकी प्रासंगिकता इसलिए भी है कि उनकी समाजवादी विचारधारा समस्याओं का केवल विश्लेषण ही नहीं करती अपितु उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. *डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने डॉक्टरेट की उपाधि कहाँ से प्राप्त की* ?

2. *डॉ0 लोहिया की तीन प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।*

3. *डॉ0 राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।*

4. *निम्नलिखित कथनों में सही कथन पर* ü *तथा गलत कथन पर* ग् *का चिह्न लगाइए।*

(*क*) *डॉ0 लोहिया का जन्म अकबरपुर तहसील में हुआ था।* ( )

(*ख*) *इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा बनारस से उत्तीर्ण की* । ( )

(ग) डॉ0 लोहिया ने 'नमक सत्याग्रह' पर अपना शोध प्रबंध पूरा किया। ( )

(घ) डॉ0 लोहिया सन् 1963 ई0 में फूलपुर से लोकसभा सदस्य चुने गए। ( )

5. सही जोड़े बनाइए।

(क) डॉ0 राम मनोहर लोहिया का जन्म सन् 1942 ई0

(ख) डॉक्टरेट की उपाधि सन् 1963 ई0

(ग) भारत छोड़ो आंदोलन सन् 1910 ई0

(घ) फर्रुखाबाद से लोकसभा सदस्य निर्वाचित सन् 1967 ई0

(ङ) डॉ0 लोहिया का देहावसान सन् 1932 ई0

पंडित दीनदयाल उपाध्याय

पिलानी के बिरला कॉलेज से इंटरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके एक मेधावी बालक समाजसेवी व उद्योगपति घनश्याम दास बिरला के सामने पहुँचा। बिरला जी ने बच्चे को पुरस्कृत करते हुए पूछा-"तुम्हें क्या चाहिए, बेटा ?" बच्चे ने तत्परता से उत्तर दिया-"मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए।" बिरला जी बच्चे के उत्तर से खूब प्रसन्न हुए। उन्होंने बच्चे को स्वर्णपदक और 250 रुपये के अलावा 10 रुपये मासिक की छात्रवृत्ति प्रदान की। यही बालक आगे चलकर 'एकात्म मानववाद' के प्रवर्तक पंडित दीनदयाल उपाध्याय के रूप में जाना गया।

राजस्थान में जयपुर के धनकिया में 25 सितंबर, सन् 1916 ई0 को जन्मे दीनदयाल उपाध्याय का बचपन दुःख और संकटों के बीच बीता। जन्म के कुछ समय बाद उनकी माँ रामप्यारी उन्हें लेकर मथुरा जिले के पैतृक गाँव नगला चंद्रभान आ गईं। पिता भगवती प्रसाद रेलवे में कर्मचारी थे। पंडित दीनदयाल जब ढाई वर्ष के थे तो पिता का देहांत हो गया। जब वह सात वर्ष के हुए तो माँ भी चल बसीं।

मजबूरी में उन्हें फिर अपने पैतृक गाँव से पलायन करना पड़ा। ननिहाल में रहते हुए उन्होंने अपनी प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की पढ़ाई पूरी थी। बी0ए0 करने के लिए कानपुर के सनातन धर्म कॉलेज आ गए। आगरा के सेंट जॉन कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में एम0ए0 करने के दौरान वह नाना जी देशमुख के संपर्क में आ गए। बीमार ममेरी बहन की सेवा करने के कारण वह एम0ए0 द्वितीय वर्ष की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाए। पंडित दीनदयाल समाज के लिए कुछ अलग करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने नौकरी के अवसरों को त्याग दिया और समाज सेवा के स्वप्न को लेकर भाऊराव देवरस के पास गए और स्वयं को आजीवन समाज सेवा के प्रति समर्पित कर दिया। एक निर्भीक पत्रकार, प्रखर लेखक, गहन अध्येता और संस्कृतिधर्मी के रूप में पंडित दीन दयाल उपाध्याय के योगदान को सदैव याद किया जाएगा। सन् 1947 ई0 में श्री भाऊराव देवरस की प्रेरणा से उन्होंने 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। 'पांचजन्य' और दैनिक 'स्वदेश' का प्रकाशन भी यहीं से शुरू

हुआ। प्रेस में सामग्री देने से लेकर कंपोज करने और प्रूफ पढ़ने तक के सभी कार्य उन्होंने किए। राष्ट्रध्‍ार्म प्रकाशन के प्रबंध निदेशक रहते हुए भी प्रेस का छोटे से छोटा काम करने में वह हिचकते नहीं थे। लेखक के रूप में 'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य' और 'जगत गुरु शंकराचार्य' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'अखंड भारत क्यों' उनकी प्रमुख कृति है। उनका विविध लेखन 15 *खंडों में प्रकाशित हुआ है।*

विचारक व लेखक श्यामा प्रसाद मुखर्जी पंडित दीनदयाल उपाध्याय के बारे में कहते थे- ''यदि मुझे ऐसे दो दीनदयाल मिल जाएँ तो मैं देश का राजनैतिक नक्शा बदल दूँगा।''

सन् 1951 *ई0 में राजनीति में आने के बाद वह भारत में सामाजिक समरसता के प्रबल पक्षकार बन गए। वह मानते थे कि यदि समाज में छुआछूत और भेदभाव घर कर गया तो यह राष्ट्र की एकता के लिए घातक होगा। एकात्म मानववाद के संदेश में ऐसे राष्ट्र की कल्पना की गई है, जहाँ विविध संस्कृतियाँ विकसित हों और एक ऐसे मानव धर्म का सृजन हो, जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समय, अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। इस तरह से पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एक विकसित व जागरूक राष्ट्र की संकल्पना दी।*

पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीयता का आधार 'भारत माता' को मानते थे। वह कहते थे 'भारत माता' से माता शब्द विच्छेद होते ही भारत केवल एक भूखंड रह जाएगा। देशवासियों का ममत्व तो माता वाले संबंध्‍ा से ही जुड़ता है।

पंडित दीनदयाल के चरित्र में उनके विचारों का अद्भुत समावेश भी दिखता है। एक बार वह वाराणसी से बलिया जा रहे थे। तृतीय श्रेणी के डिब्बे में तिल रखने की भी जगह नहीं थी। कार्यकर्ताओं ने उनका बिस्तर द्वितीय श्रेणी में लगा दिया। बलिया पहुँचने पर उन्होंने दोनांे श्रेणियों के किराये का अंतर स्टेशन मास्टर के पास जमा कर दिया। महाराष्ट्र के डोंभिविली नगर में उन्होंने नगर पालिका की जीप पर बैठने से विनम्रतापूर्वक मना कर दिया था। उन्होंने कहा कि मैं यहाँ निजी कार्य से आया हूँ, अतः नगर पालिका की जीप का उपयोग उचित नहीं है। ऐसे अनगिनत प्रसंग हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय के जीवन और विचारों में एकरूपता थी।

स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के प्रति उनका आग्रह बड़ा प्रबल था। उड़ीसा के बाबूराव पालधीकर ने लिखा है-''एक बार नागपुर में शेविंग के दौरान किसी ने मेरा साबुन उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया। मैंने गुस्से से नजर उठाकर देखा तो सामने पंडित जी खड़े थे। वह कहने लगे-जब देशी साबुन उपलब्ध है तो विदेशी कंपनी की बनी वस्तु क्यों प्रयोग करते हो? भाई नाराज न होना! जब हम स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का उपदेश देते हैं तो हमें स्वयं भी वैसा आचरण करना चाहिए अन्यथा हमारी बात का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय सच्चे अर्थों में युगदृष्टा थे। मुंबई में अपने ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने एकात्म मानववाद की व्याख्या प्रस्तुत की थी। उन्होंने कहा था-''विश्व का ज्ञान और आज तक की संपूर्ण परंपरा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे, जो हमारे पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवशाली होगा।''

हम सभी को पंडित दीनदयाल उपाध्याय जैसे तेजस्वी, तपस्वी एवं यशस्वी युगचेता महापुरुष के सपनों के भारत का निर्माण करने का संकल्प लेना चाहिए।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. ***पंडित दीनदयाल उपाध्याय को बचपन में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा*** ?
2. ***बालक दीनदयाल ने किस प्रसंग पर यह कहा था कि मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए*** ?
3. ***पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कौन-कौन सी पुस्तकों की रचना की*** ?
4. ***राष्ट्रधर्म प्रकाशन से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं का नाम बताइए*** ।
5. ***पंडित दीनदयाल उपाध्याय के चरित्र की किसी एक विशेषता के बारे में लिखिए*** ?
6. '***एकात्म मानववाद' से राष्ट्र की उन्नति कैसे होगी*** ? ***स्पष्ट कीजिए***।
7. ***राष्ट्रधर्म पत्रिका का प्रकाशन किसकी प्रेरणा से दीनदयाल जी ने किया था*** ?
8. ***पंडित दीनदयाल के अनुसार राष्ट्रीयता का आधार क्या है*** ?
9. ***पंडित दीनदयाल जी के अनुसार 'एकात्म मानववाद' क्या है*** ?

पाठ - 38

जमशेद जी नसरवान जी टाटा

स्काटलैण्ड के प्रसिद्ध लेखक कारलाइल ने अपने एक भाषण में कहा था-"जिस देश का लोहे पर नियंत्रण हो जाता है उसका शीघ्र ही सोने पर नियंत्रण हो जाता है।" मैनचेस्टर (लंदन) में दिये उनके इस भाषण को सुनकर एक नवयुवक बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपने व्यापार को एक नयी दिषा दी और आगे चलकर भारत के औद्योगिक विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी बन गया। इस नवयुवक का नाम जमषेद जी नसरवान जी टाटा था।

जमशेद जी नसरवान जी टाटा का जन्म गुजरात के एक पारसी परिवार में 3 मार्च 1839 ई0 को हुआ था। उनकी प्रारम्भिक षिक्षा घर पर हुई। बाद में इनके पिता इन्हें मुम्बई ले गए। उस समय उनकी आयु 13 वर्ष की थी। वहाँ उन्होंने पहले स्थानीय पुरोहितों से पढ़ा। आगे की पढ़ाई 'एल्फिस्टन कालेज' से पूरी की। कालेज में अध्ययन के दौरान ही इनका विवाह 'हीराबाई' से कर दिया गया। सन् 1856 ई0 में उनके पुत्र दोराब जी का जन्म हुआ।

जमशेद जी ने शिक्षा पूरी करने के बाद एक वकील के साथ काम करना आरम्भ किया किन्तु उसमें उनका मन नहीं लगा। उन्होंने वकील का दफ्तर छोड़कर अपने पिता के व्यवसाय में हाथ बँटाना उचित समझा। व्यवसाय में उन्हें बहुत रुचि थी। अतः वे सफल व्यवसायी बनने के गुर शीघ्र ही सीख गए। उन्होंने व्यापार की बारीकियों को समझा। व्यापार के प्रति बेटे की लगन और कर्मठता देखकर नसरवान जी बहुत प्रसन्न थे। अब वे अपना व्यवसाय भारत से बाहर विदेषों में भी फैलाना चाहते थे। इस उद्देष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जमषेद जी को चीन भेजा। जमषेद जी ने हांग कांग और शंघाई जैसे बड़े नगरों में अपने व्यापार की शाखाएँ खोलीं। उन्होंने चीन में रहकर वहाँ की अर्थ और व्यापार व्यवस्था का भी अध्ययन किया।

अपने व्यापार को विस्तार देने की कड़ी में वे लन्दन भी गए। उस समय उनकी उम्र केवल 25 वर्ष थी।उन्होंने लंदन में सूती वस्त्र उद्योग पर अधिक ध्यान दिया। इस सम्बंध में उन्होंने लंकाषायर और मैनचेस्टर नगरों की यात्राएँ कीं। यह नगर वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ वे चार वर्ष तक वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित समस्याओं

का अध्ययन करते रहे।
स्वदेष लौटने पर उन्होंने पाया कि उनके पिता का व्यवसाय अच्छी स्थिति में नहीं है। उनकी फर्म पर बाजार के कर्ज बढ़ते जा रहे थे। बाजार में उनकी साख गिर रही थी। इस कठिन समय में पिता और पुत्र ने अपनी योग्यता और सूझबूझ का परिचय देते हुए एक कठिन परन्तु सही निर्णय लिया। उन्होंने अपना मकान व कुछ निजी सम्पत्ति बेचकर कर्जों की अदायगी कर दी। इससे एक तो व्यापारियों का विष्वास उनकी फर्म में बढ़ गया दूसरे भावी प्रगति के द्वार भी खुल गए। उन दिनों अपने देष में कपड़े की मिलें कम थीं। जो मिलें थीं भी उनमें मोटे कपड़े तैयार होते थे।

जमषेद जी भारत में लंकाषायर और मैनचेस्टर जैसी उन्नत किस्म की मिलें स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर भारत द्वारा निर्यात की जाने वाली कपास की सफाई, कताई, बुनाई का कार्य देखा। उन्होंने पाया कि सस्ते दर पर खरीदी गयी भारतीय कपास से बने इन मिलों के कपड़े भारत में बहुत ऊँचे दामों पर बेचे जाते हैं। इस बात से इन्हें बहुत दुःख हुआ। जमषेद जी ने दृष्ढ़ निष्चय किया कि वे ऐसी मिलें भारत में भी खोलेंगे।

जनवरी 1877 *ई*0 *में इन्होंने नागपुर में 'इम्प्रेस मिल' नाम की सूती मिल खोली। आरम्भ में जमषेद जी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वे बिना घबराये, धैर्य व निष्ठा के साथ अपने कार्य में लगे रहे। उन्होंने अपने कारखानों में नई तकनीकों और नई मषीनों का प्रयोग किया। उद्योग स्थापना के मूल में स्वदेषी वस्तुओं के अधिक से अधिक प्रयोग की भावना काम कर रही थी। जमषेद जी भारतीय खनिज सम्पदा और पूँजी का उपयोग भारत में ही करने के पक्षधर थे। 'स्वदेषी मिल लिमिटेड' नामक मिल की स्थापना के पीछे भी यही देष प्रेम की भावना काम कर रही थी। वे भारतीय उद्योग को विष्व व्यापार में सम्मानित स्थान दिलाना चाहते थे।*

नागपुर कपड़ा मिल की स्थापना के मात्र तीन वर्ष बाद ही सन् 1880 *ई*0 *में जमषेद जी के मन में इस्पात उद्योग शुरू करने की अभिलाषा उत्पन्न हुयी परन्तु अंग्रेज सरकार से इतने बड़े उद्योग की स्वीकृति मिलना आसान नहीं था। इसके लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। अन्ततः कई वर्षों बाद उन्हें सरकार की तरफ से अनुमति मिल गई। अभी भूगर्भ विषेषज्ञों द्वारा खनिज सर्वेक्षण का कार्य चल ही रहा था कि जमषेद जी का देहान्त हो गया।*

जमषेद जी के बाद उनके पुत्र दोराब जी टाटा व रतन जी टाटा ने अपने पिता के अधूरे सपनों को पूरा किया। सन् 1911 *ई*0 *में लोहा और इस्पात के कारखाने की स्थापना के साथ ही टाटा का महान स्वप्न पूर्ण हुआ। बिहार में साकची गाँव के घने जंगलों को साफ करके यह कारखाना 'टाटा आयरन एण्ड स्टील मिल्स' स्थापित किया गया। अब यह क्षेत्र एक महानगर के रूप में बदल गया है। इसका नाम उन्हीं के*

नाम पर जमषेदपुर रखा गया हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. जमशेदजी ने चीन और इंग्लैंड की यात्रा क्यों की?
2. जमशेदजी की 'स्वदेशी मिल' की स्थापना का क्या उद्देश्य था?
3. जमशेदजी ने मुख्यतः किन उद्योगों की स्थापना की?
4. सही (√) अथवा गलत (x) का चिह्न लगाइए-

(क) जमशेदजी का जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ था।
(ख) नसरवानजी अपना व्यवसाय विदेशों में भी फैलाना चाहते थे।
(ग) जमशेदजी को व्यवसाय में रुचि नहीं थी।
(घ) लंकाशायर और मैनचेस्टर वस्त्र उद्योग के मुख्य केंद्र थे।

5. समूह से अलग शब्द को छाँटिए-

(क) व्यापार, बिक्री, विदेश, बाजार
(ख) प्लास्टिक, कपास, रेशम, ऊन
(ग) लंकाशायर, मेनचेस्टर, नागपुर, जमशेदपुर

6. सही जोड़े बनाइए-

(क) वे तेरह वर्ष की अवस्था में जमशेदपुर
(ख) उन्होंने चीन में रहकर जनवरी सन् 1877 ई0
(ग) इंप्रेस मिल मुंबई (बंबई) आ गए
(घ) इस्पात उद्योग अर्थ और व्यापार व्यवस्था का अध्ययन किया।

7. अपने गाँव/नगर के किसी उद्योग के बारे में लिखिए।

Table of Contents

a. शेरशाह सूरी
b. चाँदबीबी
c. नानक देव
d. महाराणा प्रताप
e. अहिल्याबाई
f. महाराजा रणजीत सिंह
g. मंगल पाण्डे
h. कुँवर सिंह
i. बेगम हजरत महल
j. ईश्वर चन्द्र विद्यासागर
k. महात्मा गांधी
l. श्रीनिवास रामानुजन
m. डॉ0 विश्वेश्वरैया
n. पण्डित जवाहर लाल नेहरू
o. डॉ0 राम मनोहर लोहिया
p. जमशेद जी नसरवान जी टाटा

Table of Contents